धूप-छाँव के रिश्ते

(कहानी संग्रह)



डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

धूप-छाँव के रिश्ते

(कहानी संग्रह)

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

ISBN: 978-81-49169-15-4

Publishing Right: Pranjal Publication
First Edition: January 2016
Price: 315/-

Publisher: Pranjal Publication
Print & Bound in India

Published by: Ink Publication
Office: Dariya Ganj, Delhi - 110002
E-mail: pranjalpublication@gmail.com

Dhoop-Chhaon Ke Rishte (Story Collection)
Author: Dr. Suresh Kumar Mishra 'Uratript'
Cover & Text Design: Pranjal & Creative Team

दो शब्द...

साहित्य किसी भी समाज का दर्पण होता है, जिसमें उसकी संस्कृति, परंपराएँ, संघर्ष, मानवीय संवेदनाएँ और यथार्थ झलकते हैं। साहित्य न केवल मनोरंजन का माध्यम होता है, बल्कि वह एक दिशा भी प्रदान करता है, एक विचारधारा भी रचता है और जीवन को गहराई से समझने का अवसर भी देता है। इसी साहित्यिक परंपरा में डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त' का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। उनका लेखन केवल शब्दों का संयोजन मात्र नहीं है, बल्कि वह समाज की जटिलताओं, मानवीय भावनाओं और जीवन के विविध रंगों को एक नई दृष्टि से प्रस्तुत करता है।

'धूप-छाँव के रिश्ते' कहानी संग्रह उनकी इसी दृष्टि का सजीव उदाहरण है। यह संग्रह जीवन के अनदेखे पहलुओं को उजागर करने का प्रयास करता है, जहाँ धूप-छाँव केवल प्राकृतिक घटनाएँ नहीं, बल्कि मानवीय संबंधों और परिस्थितियों के प्रतीक हैं। इस संग्रह में संकलित कहानियाँ जीवन के संघर्ष, प्रेम, मोह, विछोह, हर्ष और विषाद को इतनी कुशलता से उकेरती हैं कि पाठक स्वयं को उन कहानियों के पात्रों के रूप में देखने लगता है।

डॉ. मिश्रा एक सजग साहित्यकार हैं, जिनकी लेखनी मानवीय भावनाओं की गहराइयों तक पहुँचती है। उनकी कहानियों में एक विशेष प्रवाह है, जो पाठक को आरंभ से अंत तक बाँधकर रखता है। उनका लेखन केवल कल्पना की उड़ान नहीं, बल्कि वास्तविकता की ठोस ज़मीन पर खड़ा होता है। वे समाज की विसंगतियों को व्यंग्य और कटाक्ष के माध्यम से उजागर करने में सिद्धहस्त हैं, लेकिन साथ ही मानवीय संवेदनाओं को पूरी गरिमा और गहराई के साथ प्रस्तुत करने की क्षमता भी रखते हैं।

उनकी लेखनी में हास्य की मिठास है, कटाक्ष की धार है, और एक ऐसा यथार्थ है, जो पाठक को सोचने पर मजबूर कर देता है। वे अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों को केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि वैचारिक रूप से भी समृद्ध करने का कार्य करते हैं। यही विशेषता उन्हें एक विशिष्ट साहित्यकार बनाती है।

यह संग्रह जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है। इसमें संकलित कहानियाँ किसी न किसी रूप में हमारे जीवन से जुड़ी होती हैं। हर कहानी अपने आप में एक दर्पण की तरह है, जिसमें पाठक अपने अनुभवों और भावनाओं की झलक देख सकता है। इन कहानियों में जीवन की कठोर सच्चाइयाँ भी हैं और मानवीय संवेदनाओं की कोमलता भी।

संघर्ष और सफलता: इस संग्रह की कई कहानियाँ हमें यह सिखाती हैं कि जीवन में संघर्ष ही सफलता की नींव होते हैं। हर कठिनाई हमें कुछ नया सिखाती है और आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है।

रिश्तों की जटिलता: रिश्ते धूप-छाँव की तरह होते हैं—कभी मधुर, कभी कटु, कभी समीप, तो कभी दूर। इस संग्रह की कहानियाँ इन्हीं रिश्तों की बारीकियों को उजागर करती हैं।

सामाजिक यथार्थ: डॉ. मिश्रा का लेखन समाज के वास्तविक स्वरूप को दर्शाने में सक्षम है। वे अपनी कहानियों के माध्यम से उन मुद्दों पर प्रकाश डालते हैं, जो अक्सर हमारी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं।

हास्य और व्यंग्य: उनकी कहानियों में हास्य की मिठास और व्यंग्य की तीव्रता पाठकों को गुदगुदाने के साथ-साथ सोचने पर भी विवश करती है।

डॉ. मिश्रा की भाषा सहज, प्रवाहपूर्ण और प्रभावशाली है। वे कठिन से कठिन विषयों को इतनी सरलता से प्रस्तुत करते हैं कि पाठक बिना किसी बाधा के कहानी में डूब

जाता है। उनकी शैली में संवादों की सजीवता, पात्रों की प्रामाणिकता और घटनाओं की विश्वसनीयता होती है। वे शब्दों के माध्यम से दृश्यात्मकता उत्पन्न करने में सिद्धहस्त हैं, जिससे पाठक को हर दृश्य अपनी आँखों के सामने घटित होता हुआ प्रतीत होता है।

यह कहानी संग्रह पाठकों को न केवल मनोरंजन प्रदान करता है, बल्कि उन्हें आत्ममंथन के लिए भी प्रेरित करता है। इसमें संकलित कहानियाँ जीवन के विविध अनुभवों का दस्तावेज हैं, जो पाठकों को अपने भीतर झाँकने और जीवन को नए दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा देती हैं।

'धूप-छाँव के रिश्ते' केवल एक कहानी संग्रह नहीं, बल्कि जीवन के विभिन्न रंगों और संवेदनाओं का संकलन है। यह पुस्तक हमें यह सिखाती है कि जीवन में हर परिस्थिति का अपना महत्व होता है—धूप भी जरूरी है और छाँव भी। यह संग्रह उन क्षणों को हमारे सामने लाता है, जिन पर हम अक्सर ध्यान नहीं देते, लेकिन जो हमारे जीवन में गहरे प्रभाव छोड़ते हैं।

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त' की यह कृति साहित्य प्रेमियों के लिए किसी अमूल्य धरोहर से कम नहीं। यह पुस्तक केवल एक बार पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि बार-बार पढ़ने के लिए है, क्योंकि हर बार यह हमें जीवन के किसी नए पहलू से परिचित कराती है। इस संग्रह के लिए मैं डॉ. मिश्रा को हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि यह पुस्तक साहित्य जगत में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाएगी।

— **रमाकांत शुक्ला**
(पद्म श्री से सम्मानित विद्वान)

अनुक्रमणिका

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

1. टूटे हुए सपनों की सरगम

गांव के बाहर, पीपल के पेड़ की छांव तले, एक बूढ़ा आदमी रोज़ बैठा रहता था। उसकी आंखों में बीते दिनों की एक परछाईं झलकती थी। नाम था—रामलाल। वक्त के थपेड़ों ने उसकी कमर झुका दी थी, पर उसकी आंखें अब भी सपनों से भरी थीं। गांव वाले कहते थे कि यह बूढ़ा पागल है, अपने ही गुज़रे दिनों में खोया रहता है। पर कोई नहीं जानता था कि उसकी आंखों में जो आंसू छलकते हैं, वे किसी बेकार की सनक का नतीजा नहीं, बल्कि एक अधूरे सपने की जलती चिता हैं।

कभी यह बूढ़ा भी सपनों का सौदागर था। रामलाल ने अपनी बेटी गौरी को पढ़ाने का सपना देखा था। वह चाहता था कि उसकी बेटी गांव की पहली मास्टरनी बने। पूरे गांव को उस पर गर्व हो। मिट्टी के चूल्हे के धुएं में घुटती औरतों के लिए वह एक उम्मीद बने। बेटी ने भी मेहनत की, दिन-रात पढ़ती रही। मां सिलाई कर कुछ पैसे जुटाती और रामलाल खेतों में मजदूरी करके बेटी की किताबें खरीदता। उसके लिए पढ़ाई बस शिक्षा नहीं थी, बल्कि एक इज्जत थी, एक मक़सद था, एक जिंदगी थी।

लेकिन किस्मत को शायद यह मंज़ूर न था। एक दिन, गौरी के ससुराल से पैगाम आया—"अगर दहेज में पचास हज़ार न दिए, तो गौरी को घर वापस भेज देंगे।" रामलाल की दुनिया जैसे थम गई। वह गरीब आदमी था, मजदूरी करके घर चलाने वाला। इतना पैसा कहां से लाता? उसने रिश्तेदारों से मदद मांगी, गांव वालों के सामने हाथ फैलाए, लेकिन हर जगह ताने ही मिले—"बेटी को ज्यादा पढ़ाने का यही नतीजा है।" आखिरकार, बेटी की

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

इज्जत बचाने के लिए उसने अपनी पुश्तैनी ज़मीन गिरवी रख दी। गौरी ससुराल लौट तो गई, पर रामलाल की कमर हमेशा के लिए झुक गई।

कुछ साल बीते, एक दिन खबर आई कि गौरी अब इस दुनिया में नहीं रही। दहेज के लिए उसे जला दिया गया था। रामलाल दौड़ता हुआ बेटी की चिता के पास पहुंचा, पर वहां सिर्फ राख बची थी—उसके सपनों की राख, उसके अरमानों की राख, उसकी ज़िन्दगी की राख। गांव के लोग तमाशबीन बने खड़े रहे, कोई आगे नहीं आया। कानून, इंसाफ़, समाज—सब खामोश थे।

उस रात रामलाल गांव छोड़कर चला गया। वर्षों बाद, जब वह लौटा तो वही पीपल के पेड़ के नीचे बैठने लगा। किसी से कुछ नहीं कहता, बस खाली आंखों से आसमान को ताकता रहता। बच्चे उसकी ओर उंगली उठाकर हंसते, बड़े उसे सनकी कहते, लेकिन कोई नहीं जानता था कि वह अपने भीतर कितना कुछ समेटे बैठा है। उसकी आंखों में हर दिन बेटी की हंसी उभरती, हर रात उसकी चीखें गूंजतीं।

एक दिन गांव के स्कूल में एक नई मास्टरनी आई। उसका नाम सुनते ही रामलाल की आंखों में चमक आ गई—वह गौरी की सहेली थी, जिसे गौरी ने ही पढ़ने के लिए प्रेरित किया था। मास्टरनी ने जब रामलाल को देखा, तो वह दौड़कर उसके पैरों में गिर पड़ी। उसने कहा, "बाबा, आपकी बेटी मरी नहीं। वह हर लड़की के सपनों में जिंदा है। आपने जो सपना देखा था, वह अधूरा नहीं है।"

रामलाल की आंखों में पहली बार सुकून के आंसू थे। उसने कांपते हाथों से अपनी बेटी की सहेली के सिर पर हाथ रखा और धीरे से कहा, "तो फिर उसे मत टूटने देना... उसे मत जलने देना..."

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

उस दिन पहली बार गांव वालों ने रामलाल को मुस्कुराते देखा। लेकिन अगले ही दिन, पीपल के पेड़ के नीचे उसका निर्जीव शरीर मिला। शायद उसकी आत्मा अपनी बेटी से मिलने चली गई थी, लेकिन उसकी आखिरी मुस्कान यह बताने के लिए काफी थी कि कुछ सपने मरते नहीं, वे किसी और की आंखों में जी उठते हैं।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

2. बिखरा हुआ आशियाना

गांव की कच्ची गलियों में खेलते हुए रामलाल ने कभी नहीं सोचा था कि एक दिन वही गलियां उसके पैरों की बेड़ियां बन जाएंगी। बचपन में खेतों की मेड़ पर दौड़ते हुए, मिट्टी में खेलते हुए, और अपनी मां की गोद में कहानियां सुनते हुए उसने एक सुंदर आशियाने का सपना बुना था। वह चाहता था कि जब वह बड़ा हो, तो उसके पास एक पक्का घर हो, जिसमें उसकी पत्नी और बच्चे चैन की नींद सो सकें। लेकिन समय की बेरहम लहरें उसके सपनों को बहाकर ले जाने को तैयार बैठी थीं।

रामलाल का जीवन संघर्षों से भरा था। उसकी छोटी सी दुनिया में उसकी पत्नी सीता और दो मासूम बच्चे, मुन्नी और गोपाल, थे। गांव में मजदूरी करके वह जैसे-तैसे घर चला रहा था। खेतों में काम करता, कभी दूसरों के घरों में निर्माण कार्य करता, और कभी-कभी नदी से मछलियां पकड़कर बाजार में बेचता। लेकिन उसकी सबसे बड़ी ख्वाहिश थी कि वह अपने परिवार के लिए एक मजबूत छत बना सके, ताकि बारिश की बूंदें उसके सपनों को न बहा ले जाएं। हर दिन वह इस सपने को पूरा करने के लिए थोड़ा-थोड़ा पैसा जोड़ता, मगर उसकी तकदीर शायद उसके इरादों से ज्यादा मजबूत थी।

फिर एक दिन, गांव में अचानक बाढ़ आ गई। नदियों ने रौद्र रूप धारण कर लिया और पानी ने सबकुछ निगलना शुरू कर दिया। लोगों की चीखें, मवेशियों की बेकाबू हलचल और चारों ओर फैली तबाही ने पूरे गांव को दहला दिया। रामलाल का छोटा सा घर भी इस कहर से अछूता नहीं रहा। देखते ही देखते उसकी मिट्टी की दीवारें धराशायी हो गईं, घर का तिनका-

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

तिनका बिखर गया। उसकी पत्नी सीता बच्चों को सीने से लगाए बिलख रही थी। चारों ओर पानी ही पानी था और रामलाल की मेहनत का हर निशान उसमें घुल चुका था।

रामलाल ने कीचड़ में दबे सामान को निकालने की कोशिश की, लेकिन वहां बचा ही क्या था? उसकी जमा पूंजी, उसकी छोटी सी खाट, उसके सपने—सबकुछ बहकर कहीं दूर चला गया था। बेघर होने का दर्द उसके दिल को चीर रहा था। गांव के मुखिया से उसने मदद मांगी, लेकिन वहां भी बेरुखी के अलावा कुछ न मिला। कोई उसकी तकलीफ को समझने वाला नहीं था। गांव वालों के पास खुद की परेशानियां थीं, और सरकारी मदद तो बस कागजों में ही सिमटी रह गई थी।

अब उसके पास कोई और रास्ता नहीं बचा था। गांव में भूख और बेबसी के सिवाय कुछ नहीं बचा था। बच्चों की भूख उसकी सबसे बड़ी चिंता बन गई थी। आखिरकार, भारी मन से उसने फैसला किया कि वह परिवार के साथ शहर जाएगा। शायद वहां कोई उम्मीद की किरण मिले। उस रात, जब पूरा गांव बाढ़ की तबाही से सहमा हुआ था, रामलाल ने अपने परिवार के साथ गांव छोड़ दिया। एक उम्मीद, एक बेहतर भविष्य की तलाश में, वे शहर की ओर चल पड़े।

लेकिन शहर ने भी उन पर दया नहीं की। वहां न कोई ठिकाना था, न कोई जान-पहचान। मजदूरी की तलाश में भटकते-भटकते उनके पैर छिल गए, मगर किसी ने उन्हें काम नहीं दिया। हर जगह बेरुखी थी, हर चेहरे पर स्वार्थ लिखा था। आखिरकार, एक निर्माण स्थल पर रामलाल को मजदूरी मिल गई। लेकिन विडंबना यह थी कि जिस घर की ईंटें वह जोड़ रहा था,

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

वह किसी अमीर का महल था, और खुद उसके पास रहने को एक छप्पर भी नहीं था।

सीता भी दिनभर सिलाई-कढ़ाई करके थोड़ा बहुत कमाने लगी, लेकिन शहर की महंगाई और गरीबी का दानव हर रोज और भयानक रूप लेता जा रहा था। पेट भरने की जद्दोजहद में दिन कटते गए, लेकिन उनकी जिंदगी की परेशानियां कम होने का नाम नहीं ले रही थीं। सबसे बड़ा झटका तब लगा जब गोपाल बुखार से तपने लगा। उसका शरीर बेजान होता जा रहा था, और रामलाल को लग रहा था कि वह कुछ नहीं कर पा रहा। वह उसे लेकर अस्पताल भागा, मगर वहां भी पैसे की बेरहम दीवार खड़ी थी। डॉक्टर ने बिना फीस लिए देखने से इनकार कर दिया। रामलाल की आंखों के सामने अंधेरा छा गया।

गोपाल बेजान हाथों से रामलाल की उंगलियां पकड़कर धीरे-धीरे ढीली छोड़ चुका था। उसका मासूम चेहरा हमेशा के लिए शांत हो गया था। रामलाल की दुनिया उजड़ गई। उसकी आंखों के आगे घना अंधेरा छा गया। वह टूट गया, बिखर गया, और खुद को कोसने लगा। क्या यही उसका सपना था? क्या इसी दिन के लिए उसने इतनी मेहनत की थी?

घर लौटने पर उसने देखा, सीता ने चूल्हे पर पानी चढ़ा रखा था, मगर घर में खाने का एक दाना भी नहीं था। वह कांपते स्वर में बोली, "कुछ तो पकाना है, बच्चों को भूख लगी है।" रामलाल की आंखें डबडबा गईं। उसने कोई जवाब नहीं दिया, बस चुपचाप आसमान की ओर देखा, जहां कहीं उसका टूटा हुआ आशियाना अब भी बिखरा पड़ा था। उसकी आंखों से एक आंसू टपका, जो मिट्टी में समा गया—बिल्कुल उसके सपनों की तरह।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

3. अधूरी ख्वाहिशों की चीख

गाँव के एक कोने में पुरानी कच्ची मिट्टी की दीवारों वाला एक घर था, जिसकी छत से फूस की टहनियों के बीच से पानी टपकता रहता था। बरसों से इस घर ने धूप, बारिश और आँधियों का सामना किया था, लेकिन अब यह अकेलेपन और उदासी का प्रतीक बन चुका था। घर के भीतर घना अंधेरा था, और उस अंधेरे में एक अकेली बूढ़ी औरत बैठी थी—कुंती।

कुंती की आँखें सूनी थीं, लेकिन उनमें एक प्रतीक्षा झलकती थी। वह अपनी लकड़ी की छड़ी को बार-बार ज़मीन पर पटकती और हर आहट पर दरवाजे की ओर देखती। उसे लगता कि शायद कोई आएगा, कोई पुकारेगा—"माँ!" लेकिन यह पुकार अब केवल उसके मन में गूँजती थी।

कुंती की पूरी जिंदगी संघर्षों से भरी रही थी। शादी के कुछ ही वर्षों बाद उसके पति को एक गंभीर बीमारी ने निगल लिया। वह अकेली रह गई, लेकिन उसके जीवन में एक आशा की किरण थी—उसका इकलौता बेटा मोहन। उसने अपने बेटे को हर कठिनाई सहकर पाला, अपने पेट काटकर उसे पढ़ाया, लेकिन वक़्त के साथ सब कुछ बदल गया। मोहन पढ़ाई के लिए शहर गया और फिर वहीं का होकर रह गया।

कुंती ने कितने ही पत्र लिखे, कितनी बार संदेश भिजवाए, लेकिन शहर की चकाचौंध में मोहन का मन ऐसा डूबा कि गाँव और उसकी माँ

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

दोनों धुंधले पड़ गए। माँ के आँचल की खुशबू उसे अब याद न थी। उसे अब महंगे परफ्यूम और आलीशान जिंदगी की आदत पड़ गई थी।

रात के सन्नाटे में कुंती की आँखें भीग जातीं। वह उन दिनों को याद करती, जब मोहन उसके आँगन में नंगे पाँव दौड़ता था, मिट्टी में खेलता था, और फिर गले में बाहें डालकर कहता था—"माँ, भूख लगी है।" तब वह उसे अपने हाथों से रोटी खिलाती थी, प्यार से सिर सहलाती थी। लेकिन आज वही बेटा उसे एक बोझ समझने लगा था।

हर दिन कुंती दरवाजे पर बैठकर राह देखती। हर गुजरने वाले से पूछती—"कोई मोहन को देखा है?" गाँव के लोग अब उसके इस सवाल से परेशान हो गए थे। कुछ लोग तो उससे कहने लगे—"माई, अब मोहन को भूल जा। वह अब अमीर हो गया है, बड़ा आदमी बन गया है। वह यहाँ क्यों आएगा?" कुंती मुस्कराने की कोशिश करती, लेकिन उसकी मुस्कान में दर्द की दरारें साफ़ झलकतीं।

एक दिन कुंती बहुत बीमार पड़ गई। उसकी हालत इतनी खराब हो गई कि वह चारपाई से उठ भी नहीं पा रही थी। गाँव के लोगों ने मोहन को खबर भेजी, लेकिन वह किसी मीटिंग में व्यस्त था। उसने न कोई जवाब दिया, न आने की इच्छा जताई।

कुंती ने अपनी अंतिम साँस लेते हुए सिर्फ़ इतना कहा, "मोहन आएगा?" लेकिन कोई जवाब देने वाला नहीं था। गाँव के लोगों ने उसे आँसू भरी आँखों से मिट्टी में सुला दिया। उस दिन बारिश हो रही थी, मानो आसमान भी इस दर्द को महसूस कर रहा था।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

कुछ महीनों बाद मोहन गाँव आया, लेकिन तब जब उसे माँ की ज़मीन बेचनी थी। उसने घर के खंडहर को देखा, माँ की टूटी चारपाई को देखा, लेकिन उसके भीतर कोई भावनाएँ नहीं उमड़ीं। उसे बस ज़मीन के कागज़ों पर दस्तखत करने की जल्दी थी।

पर जब रात को वह घर में अकेला बैठा, तो अचानक हवा में एक सिसकी गूँज उठी। ऐसा लगा, जैसे अधूरी ख्वाहिशें चीख रही हों। मोहन घबरा गया, उसके कानों में माँ की आवाज़ गूँजने लगी—"मोहन आएगा?"

वह पसीने-पसीने हो गया। उसे अपनी गलती का एहसास हुआ, लेकिन अब पछताने का कोई फ़ायदा नहीं था। माँ की आत्मा अब भी उसी दरवाज़े पर बैठी उसका इंतज़ार कर रही थी, लेकिन अब मोहन के लिए कोई जवाब नहीं था।

यह कहानी केवल कुंती और मोहन की नहीं, बल्कि उन लाखों माँओं की है, जो अपने बच्चों की खुशियों के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देती हैं, लेकिन बदले में केवल अकेलापन और उपेक्षा पाती हैं। यह उन बेटों के लिए भी एक चेतावनी है, जो अपनी जिम्मेदारियों को भूलकर दुनियादारी में खो जाते हैं।

सच ही कहा गया है—

"माँ की ममता का कोई मोल नहीं, जो समझे वो इंसान, जो न समझे वो पत्थर।"

कहीं ऐसा न हो कि जब हमें माँ की ज़रूरत महसूस हो, तब बहुत देर हो चुकी हो। इसलिए, अगर आपकी माँ आपके साथ हैं, तो उन्हें समय

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

दीजिए, उनका सम्मान कीजिए, क्योंकि उनका प्यार निस्वार्थ होता है, और उनकी जगह कोई नहीं ले सकता।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

4. माँ, तू क्यों छोड़ गई?

गाँव के एक छोटे-से घर में, जहाँ दीवारों पर वर्षों पुरानी मिट्टी की गंध बसी हुई थी, वहीं रोशनी की एक किरण थी—कमला। विधवा, मगर शक्ति की मूर्ति। उसके लिए जीवन एक अनवरत संघर्ष था, परंतु उसके आँचल के साये में एक सपना पल रहा था—उसका इकलौता बेटा, मोहन। पिता के गुज़रने के बाद कमला ने अपने आँसुओं को गंगा में बहा दिया था और अपना सर्वस्व मोहन की शिक्षा में लगा दिया। दिन में दूसरों के खेतों में काम करती, रात को सिलाई-बुनाई का काम। गाँव वालों के ताने, रिश्तेदारों की उपेक्षा, समाज की दुर्दशा—कुछ भी उसे नहीं डिगा सका।

मोहन में भी अपनी माँ के प्रति अगाध श्रद्धा थी। वह दिन-रात पढ़ाई में जुटा रहता, ताकि माँ की तपस्या व्यर्थ न जाए। उसकी माँ ने जो सपने देखे थे, वह उन्हें पूरा करने को आतुर था। गाँव का पहला लड़का था जो शहर जाकर पढ़ने का साहस कर रहा था। जब उसका चयन विश्वविद्यालय में हुआ, तब कमला की आँखों में चमक थी, मगर मन में चिंता भी। शहर की दुनिया, बड़े लोग, रहन-सहन—वह सब मोहन के लिए नया था।

शहर में पहुँचकर मोहन अपने नए जीवन में रम गया। पहले तो वह रोज़ माँ को चिट्ठियाँ लिखता, मगर धीरे-धीरे उसका पत्र आना कम हो गया। माँ हर रोज़ डाकिए का रास्ता देखती, हर शाम चौपाल पर बैठकर उसके पत्र की प्रतीक्षा करती। समय के साथ मोहन की दुनिया बदल गई

थी। शहर की चमक-धमक, ऊँचे सपने, ऊँची उम्मीदें—माँ की ममता उन सबके बीच धुंधली पड़ गई।

कमला ने अपने गाँव में ही अपनी दुनिया बसा ली थी। उसकी दुनिया थी मोहन के बचपन की यादें, उसकी बोली, उसकी खिलखिलाहट। जब मोहन के कॉलेज का अंतिम वर्ष आया, तो उसने शहर में ही नौकरी तलाशने का निश्चय कर लिया। उसकी ज़िन्दगी की परिभाषा बदल गई थी। अब माँ से दूर रहना उसकी मजबूरी नहीं, बल्कि उसकी प्राथमिकता बन गई।

फिर वह दिन आया जब मोहन की सफलता की खबर अखबारों में छपी। पूरे गाँव में ढोल-नगाड़े बजे, मगर कमला के घर में सन्नाटा था। गाँव के लोग उसे बधाई देने आए, पर उसकी आँखों में आँसू थे। उसी दिन उसने मोहन को पत्र लिखा—"बेटा, तेरी सफलता ने मुझे गर्व से भर दिया, पर यह सफलता मेरी गोद को भी सूना कर गई। क्या सच में तेरी ज़िन्दगी में मेरी जगह इतनी कम हो गई?" यह पत्र मोहन तक पहुँचा, मगर वह इसे पढ़ने का समय नहीं निकाल सका।

कई महीने बीत गए। एक दिन गाँव से ख़बर आई—कमला अब इस दुनिया में नहीं रही। अकेलेपन ने उसकी देह को जर्जर कर दिया था, और एक दिन उसकी साँसें भी थम गईं। मोहन जब गाँव पहुँचा, तब तक उसकी माँ पंचतत्व में विलीन हो चुकी थी। आँगन में रखा उसका पुराना संदूक अब भी वहीं था। मोहन ने काँपते हाथों से उसे खोला। अंदर माँ के पुराने कपड़े, उसकी चिट्ठियाँ और एक छोटी-सी पोटली थी, जिसमें मोहन के बचपन के खिलौने रखे थे।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

उसके दिल की धड़कन तेज़ हो गई। उसने माँ का अंतिम पत्र खोला, जिसे पढ़कर वह ज़मीन पर गिर पड़ा। "बेटा, माँ की ममता कभी थकती नहीं, कभी मरती नहीं। पर हाँ, यह इंतज़ार ज़रूर हार जाता है... अब तुझे कोई चिट्ठी लिखने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि इस बार डाकिया जवाब नहीं लाएगा।" पत्र के आखिरी शब्दों के साथ मोहन की आँखों से आँसू टपक पड़े।

आज वह दुनिया के लिए सफल था, मगर अपनी माँ के लिए असफल। उसका रोना, उसकी पछतावा, उसकी सफलता अब किसी काम की नहीं थी। माँ चली गई थी—एक ऐसा सवाल छोड़कर जिसका जवाब शायद अब कभी नहीं मिलेगा—"माँ, तू क्यों छोड़ गई?"

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

5. वह आखिरी पत्र

शाम का सूरज हल्की सुर्ख़ी लिए अस्ताचल की ओर बढ़ रहा था। हल्की ठंडी हवा बह रही थी और दूर किसी पेड़ पर बैठे पक्षी अपने घोंसलों की ओर लौटने की तैयारी में थे। वातावरण में एक गहरी उदासी छाई हुई थी, जैसे यह शाम किसी कहानी का एक हिस्सा हो। घर के आँगन में एक वृद्धा अपने कांपते हाथों से एक पुराने संदूक की तलाशी ले रही थी। यह संदूक वर्षों पुराना था, जिसमें उसकी ज़िंदगी की कई यादें दबी पड़ी थीं।

जब उसने संदूक का ढक्कन खोला, तो अंदर से पुराने कपड़ों की हल्की सी खुशबू आई। परंतु उसकी नज़रें किसी और चीज़ की तलाश में थीं। अचानक उसकी उंगलियाँ कुछ कागज़ों के पुलिंदे से टकराईं। यह वही चिट्ठियाँ थीं, जो कभी उसकी दुनिया हुआ करती थीं। एक-एक करके उसने उन्हें छूकर देखा, मानो वे उसे फिर से किसी पुराने समय में ले जाने वाली हों।

जैसे ही उसने चिट्ठियों के बीच से एक पीला पड़ चुका पत्र निकाला, उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। यह वही आख़िरी पत्र था, जिसे उसने बरसों पहले अपने इकलौते बेटे रवि को लिखा था। उसकी आँखें भर आईं। वह धीरे-धीरे खाट पर बैठ गई और कांपते हाथों से पत्र खोलकर उसे पढ़ने लगी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

"बेटा, तेरा इंतज़ार अब सहन नहीं होता। आँखें दरवाज़े पर टिक गई हैं, हर आहट पर तेरा नाम लेती हूँ। तेरी बचपन की यादें हर दिन ताज़ा हो जाती हैं। याद है, जब पहली बार तुझे स्कूल छोड़ने गई थी, तेरा रोता हुआ चेहरा देखकर मैं भी रो पड़ी थी? और आज भी वही हाल है, मैं फिर से रो रही हूँ, मगर इस बार तू वापस नहीं आएगा, यह डर खाए जाता है।"

उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। वह आगे पढ़ने लगी—

"तेरी पसंदीदा खीर अब भी बनाती हूँ, पर खाने वाला कोई नहीं। तेरी खिलखिलाहट गूँजती थी इस घर में, अब यहाँ सिर्फ़ सन्नाटा है। जब पड़ोसी पूछते हैं कि बेटा क्यों नहीं आता, तो मैं कोई जवाब नहीं दे पाती। क्या मेरा बेटा मुझे भूल गया?"

पत्र पढ़ते-पढ़ते उसकी आँखों के सामने अतीत के दृश्य घूमने लगे।

रवि उसकी आँखों का तारा था। बचपन में कितना चंचल और प्यारा था! छोटी-छोटी बातों पर हँसने वाला, माँ के बिना एक पल भी नहीं रहने वाला बच्चा। लेकिन जैसे-जैसे बड़ा हुआ, शहर की चकाचौंध और अपने सपनों में उलझ गया।

पहले-पहल उसने चिट्ठियाँ लिखीं, फोन किए, पर धीरे-धीरे यह सब कम होता गया। एक दिन ऐसा आया जब माँ के पास सिर्फ़ उसकी यादें बचीं। वह हर दिन दरवाज़े पर बैठकर इंतज़ार करती थी, हर त्योहार पर उसकी राह देखती थी, पर वह नहीं आया।

समय बीतता गया। समाज के ताने, पड़ोसियों की सहानुभूति, अकेलेपन की पीड़ा—माँ ने सब सह लिया। लेकिन उम्मीद का दिया कभी बुझने नहीं दिया। हर सुबह उठकर भगवान से प्रार्थना करती कि बेटा लौट आए।

उसका मन भारी हो गया। वर्षों बाद वह पत्र फिर से पढ़ रही थी, और वही दर्द फिर से ताज़ा हो गया। उसकी आँखों में सवाल थे—क्या माँ की ममता इतनी सस्ती थी कि बेटे ने उसे अनदेखा कर दिया? क्या आधुनिकता और व्यस्तता की दुनिया में एक माँ की पुकार इतनी नगण्य हो गई थी?

वह सोच में डूबी थी कि अचानक दरवाज़े पर दस्तक हुई।

उसने कांपते कदमों से दरवाज़ा खोला। सामने एक अजनबी खड़ा था। पर उसकी आँखों में वही मासूमियत थी, जो कभी रवि की आँखों में हुआ करती थी।

"माँ..." आवाज़ सुनते ही माँ का दिल काँप गया।

रवि आगे बढ़ा, माँ के पैरों में गिर गया और फूट-फूटकर रो पड़ा। "माँ, मुझे माफ कर दो, मैं बहुत देर कर चुका हूँ... पर मैं तुम्हें अब कभी अकेला नहीं छोड़ूँगा।"

माँ की आँखों से आँसू बह निकले। उसने अपने कांपते हाथों से बेटे का चेहरा सहलाया। वर्षों की पीड़ा, शिकायतें, तड़प—सब एक पल में बह गई। उसने बेटे को गले से लगा लिया।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

उस रात रवि माँ के पास बैठा रहा। उसने अपने बीते वर्षों की कहानियाँ सुनाईं, अपने जीवन की मुश्किलें बताईं और माँ से अपनी दूरी का पछतावा किया।

"माँ, मैं बहुत व्यस्त था, लेकिन यह कोई बहाना नहीं है। मैं तुम्हारी तकलीफ़ समझ नहीं पाया। मैं हर रोज़ तुम्हें याद करता था, पर हिम्मत नहीं जुटा पाया कि तुम्हें चिट्ठी लिखूं या फोन करूं।"

माँ ने मुस्कुराकर कहा, "बेटा, माँ के दिल में कोई शिकवा नहीं होता। तू लौट आया, मेरे लिए यही काफी है।"

सुबह जब सूरज निकला, तो घर में एक नई ऊर्जा थी। माँ की आँखों में अब इंतज़ार का सूनापन नहीं था। उसने बेटे के हाथ थाम लिए और एक गहरी सांस ली। उसके जीवन की सबसे बड़ी पीड़ा समाप्त हो गई थी। उसे अब किसी और पत्र का इंतज़ार नहीं करना था।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

6. दिल का खाली कमरा

शहर के कोलाहल से दूर एक छोटा-सा कस्बा था, जहाँ हर गली किसी पुरानी याद की तरह शांत और ठहरी हुई लगती थी। इसी कस्बे के एक पुराने मकान में अकेले रहते थे हरिराम। उनकी उम्र पचपन के आसपास रही होगी, पर चेहरे पर झुर्रियाँ और आँखों में एक अनकही उदासी थी, जो उनके मन की पीड़ा को बयां करती थी। यह मकान कभी गुलजार हुआ करता था, हर कमरे में हंसी-ठिठोली गूँजा करती थी, लेकिन अब... अब तो जैसे हर दीवार सिसक रही थी।

हरिराम कभी सरकारी स्कूल के अध्यापक हुआ करते थे। उनके सख्त अनुशासन और ज्ञान का हर कोई कायल था, लेकिन नियति ने उनके जीवन से सारे रंग चुरा लिए थे। उनकी पत्नी सावित्री का देहांत दस साल पहले हो गया था, और एकमात्र बेटा राहुल, जो कभी उनके कंधों पर बैठकर दुनिया देखता था, अब उसी दुनिया के किसी बड़े शहर में जा बसा था। एक बार जाते हुए कहा था— "पापा, मैं जल्दी लौटूंगा," लेकिन फिर लौटकर नहीं आया।

हरिराम को आज भी याद है वो दिन, जब राहुल ने पहली बार उनसे पढ़ाई के लिए दिल्ली जाने की जिद की थी। आँखों में सपने थे, होठों पर मुस्कान थी। हरिराम ने दिल कड़ा करके उसे भेज तो दिया, पर साथ ही भेज दी थी अपनी खुशियाँ भी। शुरू-शुरू में राहुल हर हफ्ते फोन करता,

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

फिर महीने में एक बार और अब... अब तो शायद सालभर से आवाज भी नहीं सुनी थी।

घर के आँगन में लगा अमरूद का पेड़, जिसके नीचे कभी राहुल घंटों खेला करता था, अब बेजान-सा खड़ा था। हरिराम रोज़ सुबह उसकी पत्तियाँ सहलाते और जैसे खुद से ही कह उठते— "शायद इस बार फलेगा!" पर जैसे पेड़ की डालियाँ रूखी हो गई थीं, वैसे ही उनके मन की आस भी।

वक्त बीतता गया। धीरे-धीरे हरिराम की दुनिया चार दीवारों में सिमट गई। किसी से मिलना-जुलना भी कम हो गया था। लोग आते, कुछ सहानुभूति दिखाते, कुछ सलाह देते— "बाबूजी, एक किरायेदार रख लीजिए। अकेले रहना ठीक नहीं।" लेकिन हरिराम को इस मकान में किसी और की आहट पसंद नहीं थी। यह मकान तो उनके जीवन का एकमात्र सहारा था, एकमात्र गवाह था उनके दर्द का।

एक रात जब ठंडी हवा खिड़कियों से टकराकर घर में उदासी भर रही थी, तभी दरवाजे पर दस्तक हुई। हरिराम चौंक उठे। इतनी रात को कौन आया होगा? जब दरवाजा खोला तो एक युवक खड़ा था, लगभग राहुल की उम्र का। आँखों में वही चमक, वही मासूमियत। उसने धीरे से कहा, "बाबूजी, मुझे यहाँ एक कमरा किराए पर चाहिए। मैं यहीं पास के कॉलेज में पढ़ता हूँ।"

हरिराम ने कुछ क्षण उसकी आँखों में देखा, फिर कहा— "कमरा अंदर से देख लो।" युवक अंदर आया, चारों ओर नजर दौड़ाई, और फिर

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

मुस्कुराकर बोला, "बाबूजी, मैं यहीं रहना चाहता हूँ। मुझे माँ-बाप जैसा कोई नहीं मिला। आप मुझे बेटे की तरह ही रहने देंगे न?"

यह सुनते ही हरिराम की आँखें डबडबा गईं। उन्होंने सिर हिलाया और कमरे की चाबी उसे थमा दी। एक अनजान युवक, जिसे उन्होंने अभी देखा था, अचानक उनके दिल के खाली कमरे को भरने लगा था।

समय बीतने लगा। वह युवक, जिसका नाम रोहित था, हरिराम का बेहद ख्याल रखने लगा। सुबह चाय बनाकर लाना, बाजार से सब्जियाँ लाना, दवाई याद दिलाना— वह हर काम करता जो एक बेटा करता। हरिराम का जीवन फिर से चलने लगा। वे देर रात तक रोहित के साथ बातें करते, उसकी पढ़ाई के बारे में पूछते, और कभी-कभी राहुल की पुरानी बातें भी छेड़ देते।

एक दिन जब बारिश हो रही थी, हरिराम ने उसे अपने पास बुलाया और कहा— "रोहित, अगर कभी तुझे कुछ भी जरूरत हो, तो मुझसे कहना। मैं तेरा पिता हूँ।" रोहित ने मुस्कुराते हुए कहा— "बाबूजी, आपके आशीर्वाद से ही सब कुछ मिलेगा।"

लेकिन नियति को शायद यह रिश्ता भी मंजूर नहीं था। एक शाम जब रोहित कॉलेज से लौट रहा था, तभी एक तेज रफ्तार ट्रक ने उसे टक्कर मार दी। सड़क पर खून ही खून था। जब तक लोग अस्पताल ले जाते, सब कुछ खत्म हो चुका था।

जब हरिराम को खबर मिली, तो जैसे उनकी आत्मा ही कांप उठी। वह दौड़ते हुए अस्पताल पहुँचे, लेकिन वहाँ सिर्फ एक ठंडी लाश थी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

उन्होंने कांपते हाथों से उसका चेहरा देखा— वही चेहरा, जो कुछ दिन पहले उनके घर को फिर से रोशन करने आया था।

रोहित की मौत के बाद हरिराम फिर से अकेले हो गए। उनका कमरा, जो एक बार फिर उम्मीदों से भरा था, अब फिर वीरान हो गया। इस बार वे और भी ज्यादा टूट गए थे। वे रोज़ रात को उसके कमरे के दरवाजे पर खड़े रहते, जैसे कोई आवाज़ देगी— "बाबूजी, मैं आ गया!" लेकिन अब वहाँ सन्नाटा था।

एक दिन वे राहुल को फोन करने लगे, लेकिन नंबर बदल चुका था। उनकी आँखों में आँसू भर आए। वे घुटनों के बल बैठ गए, और दर्द से चिल्ला पड़े— "हे भगवान, तूने फिर से मेरा दिल का कमरा खाली कर दिया!"

उस रात पहली बार उन्होंने खुद को बहुत थका हुआ महसूस किया। वे अपने कमरे में गए, पुरानी तस्वीरें निकालीं, और धीरे-धीरे सबको देखने लगे। सावित्री की हँसी, राहुल का मासूम चेहरा, रोहित की खिलखिलाहट— सब आँखों के सामने घूमने लगा।

अगली सुबह जब पड़ोसी दरवाजा खटखटाने आए, तो कोई जवाब नहीं मिला। दरवाजा तोड़ा गया, और हरिराम अपने बिस्तर पर शांत पड़े थे— एक तस्वीर उनके सीने से लगी हुई थी। उनके चेहरे पर दर्द नहीं, बल्कि एक अजीब-सी शांति थी, जैसे अब वे किसी और जगह चले गए हों, जहाँ उनका दिल का कमरा फिर से भरा हुआ हो...

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

7. बेटी का अधूरा दहेज

ग्राम पिपरिया के छोर पर स्थित एक टूटी-फूटी झोपड़ी में रामसिंह अपनी पत्नी सीता और बेटी गौरी के साथ रहता था। यह झोपड़ी उसकी मेहनत और ईमानदारी की जीवंत गवाही थी। रामसिंह गाँव का सबसे मेहनती आदमी था। सुबह होते ही वह अपने हल-बैल लेकर खेतों की ओर निकल जाता और सूर्यास्त के समय वापस लौटता। उसकी मेहनत का प्रतिफल था कि घर में खाने भर का अनाज मिल जाता था, लेकिन बेटी गौरी की शादी की चिंता उसके सिर पर भारी थी। गौरी अब बीस की होने को आई थी और गाँव में तरह-तरह की कानाफूसी होने लगी थी—"रामसिंह की बेटी बैठी रह जाएगी, कहीं अच्छा लड़का नहीं मिलेगा।"

सीता भी दिन-रात इसी चिंता में घुलती रहती थी, लेकिन गरीबी की चक्की में पिसता हुआ रामसिंह सिर्फ़ आहें भर सकता था। गौरी बचपन से ही सीधी-सादी, शर्मीली और सुशील थी। वह खेतों में पिता का हाथ बँटाती, माँ के साथ घर सँभालती और जब भी फुर्सत मिलती, दरवाजे पर बैठकर अपने सुहाग के सपने बुनती। मगर सपना बुनने भर से भाग्य कहाँ बदलता है? शादी की बात चलती, लेकिन जैसे ही लोग दहेज की माँग करते, रामसिंह की आँखें झुक जातीं। उसे क्या मालूम था कि बेटी का हाथ थामने के लिए अब रुपयों की गड्डियाँ चाहिए! गाँव में दो-तीन जगह रिश्ता पक्का होते-होते टूट गया, क्योंकि रामसिंह की जेब खाली थी। सीता अपने फटे आँचल में मुँह छिपाकर रो लेती, लेकिन बेटी के सामने हिम्मत बनाए रखती।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

रामसिंह ने कई बार अपने दोस्तों और रिश्तेदारों से उधार लेने की कोशिश की, लेकिन हर किसी के पास अपनी मजबूरियाँ थीं। कोई कहता, "भाई, हमारे पास खुद के बच्चों की शादी का भार है," तो कोई बहाना बनाकर कन्नी काट लेता। इस सबके बावजूद, रामसिंह ने हिम्मत नहीं हारी और अंततः बहुत खोजबीन के बाद एक रिश्ता तय हुआ। लड़का अच्छा था—गणेश, जो पास के गाँव में स्कूल शिक्षक था। उसकी माँ ने कहा, "हमें दहेज में कुछ नहीं चाहिए, बस अपनी बेटी को सुखी रखेंगे।" यह सुनकर रामसिंह के दिल से एक भारी पत्थर हट गया। उसने घर-घर जाकर कर्ज़ लिया, खेत गिरवी रख दिया, ताकि बेटी को अच्छे कपड़े, गहने और जरूरी सामान दे सके। उसने सोचा था, "अगर गौरी खुशी-खुशी विदा हो जाए, तो बाकी ज़िंदगी चाहे जैसे कटे, कोई ग़म नहीं।"

शादी का दिन आया। गाँव के लोग भी मदद के लिए आगे आए। घर सजा, हल्दी-मेहंदी की रस्में हुईं, और गौरी दुल्हन बनी तो पूरे गाँव की औरतें आकर देखने लगीं—"रामसिंह की बेटी कितनी सुंदर लग रही है!" लेकिन किस्मत को कुछ और ही मंज़ूर था। जब बारात दरवाजे पर आई, तभी गणेश के चाचा ने आकर कहा, "हमारे गाँव की इज्ज़त का सवाल है। बिना दहेज के हमारी बारात खाली हाथ नहीं लौट सकती। कम से कम एक मोटरसाइकिल और सोने की चेन तो चाहिए ही!"

रामसिंह के पैरों तले ज़मीन खिसक गई। उसने हाथ जोड़कर कहा, "भाई साहब, मैंने जो कुछ था, सब लगा दिया। अब मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं है। बेटी को ही सबसे बड़ा दहेज समझिए।" लेकिन गणेश के परिवार की आँखों में लालच की ज्वाला धधक रही थी। उन्होंने वहीं शादी रोक दी। गाँव के लोगों ने बहुत समझाया, लेकिन गणेश की माँ बोली, "अगर अभी नहीं दोगे, तो बारात वापस लौट जाएगी!"

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

सीता रोती रही, गौरी की आँखों से आँसू बहते रहे, लेकिन रामसिंह मजबूर था। हाथ में कुछ होता, तो वह ज़रूर देता, लेकिन उसकी जेब खाली थी। आख़िरकार, बारात बिना दुल्हन लिए लौट गई। गौरी, जो कुछ घंटे पहले तक सुहाग के सपने देख रही थी, अब बेसुध पड़ी थी। उसके सपने टूटकर बिखर गए थे, उसकी इज्ज़त मिट्टी में मिल गई थी। माँ-पिता की आँखों में सिर्फ़ बेबसी थी। गाँव में ये खबर जंगल में आग की तरह फैल गई—"रामसिंह की बेटी का दहेज अधूरा रह गया!"

गौरी ने उस रात कुछ नहीं कहा, बस चुपचाप अपने कमरे में चली गई। माँ-बाप को लग रहा था कि वह इस सदमे को सह लेगी, लेकिन अगली सुबह जब सीता ने दरवाजा खोला, तो देखा—गौरी के गले में फाँसी का फंदा पड़ा था, आँखें खुली थीं, और चेहरा ठंडा हो चुका था। उसने इस ज़हरीली दुनिया को छोड़ दिया था। घर की चौखट, जो कल तक शादी के गीतों से गूँज रही थी, अब चीख-पुकार से भर गई।

रामसिंह पत्थर की तरह बैठा रह गया। उसकी आँखों से आँसू बहते रहे, लेकिन अब कोई उपाय नहीं था। वह सोचता रहा—"काश, मैं अमीर होता! काश, समाज दहेज जैसी बुराई से मुक्त होता! काश, मेरी बेटी को जीने का हक़ मिलता!" लेकिन अब पछताने से कुछ नहीं होने वाला था। गाँववालों ने अफ़सोस ज़रूर जताया, लेकिन कोई आगे नहीं आया यह कहने कि इस बेटी को मारने वाले वही थे, जिन्होंने दहेज की माँग की थी।

गौरी चली गई, मगर जाते-जाते समाज पर एक ऐसा सवाल छोड़ गई, जिसका जवाब आज भी किसी के पास नहीं है। क्या बेटियाँ केवल सौदेबाज़ी की वस्तु बनकर रह गई हैं? क्या दहेज का यह दानव

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

कभी समाप्त नहीं होगा? जब तक इस सोच में बदलाव नहीं आएगा, तब तक न जाने कितनी गौरी यूँ ही दम तोड़ती रहेंगी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

8. चिट्ठी जो कभी भेजी नहीं गई

ग्राम मोहनपुर की संकरी गलियों में एक टूटा-फूटा मकान था, जिसकी दीवारों से प्लास्टर झड़ चुका था। भीतर एक बूढ़ी औरत बैठी थी—सांवली-सूखी देह, आंखों में गहराती उदासी। यह थी रामदुलारी, जिसे पूरा गाँव 'बुढ़िया माँ' कहकर बुलाता था। उसका बेटा, मोहन, सालों पहले शहर कमाने गया था और तब से कोई खबर नहीं आई। बूढ़ी आँखें हर सांझ डाकिये की राह तकतीं, लेकिन वह चिट्ठी कभी नहीं आई, जिसका उसे बेसब्री से इंतज़ार था।

यादों की गठरी खोलते ही वह अतीत में डूब जाती। मोहन जब छोटा था, तब खेतों में उसके साथ दौड़ता था, आम के पेड़ पर चढ़ता था और रात को उसकी गोद में सिर रखकर सो जाता था। रामदुलारी की दुनिया मोहन के बिना अधूरी थी। जब वह कमाने के लिए शहर गया, तब माँ की आंखों में गर्व और दर्द, दोनों थे। मोहन ने वादा किया था—"माँ, मैं जल्द ही लौटूँगा। तुझे खूब सारी चिट्ठियाँ लिखूँगा।" लेकिन पहली चिट्ठी के बाद न कोई पत्र आया, न कोई संदेश।

रामदुलारी ने कई बार गाँव के बाबू जी से कहकर चिट्ठी लिखवाई, लेकिन कोई उत्तर नहीं आया। हर मेले में वह सोचती, शायद इस बार मोहन आएगा, लेकिन उसकी आस हर बार टूट जाती। अब उसकी दुनिया एक पुरानी चारपाई और मिट्टी की दीवारों तक सिमट गई थी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

मोहल्ले के बच्चे कभी-कभी आकर उसे घेर लेते और उसकी आँखों में झाँकते, मानो उसकी चुप्पी में छिपे दर्द को समझना चाहते हों।

एक दिन गाँव का डाकिया आया। उसका मन भारी था। उसने कांपते हाथों से एक चिट्ठी दी और कहा, "बुढ़िया माँ, यह चिट्ठी मोहन ने सालों पहले लिखी थी, लेकिन यह कहीं गुम हो गई थी। आज किसी ने इसे डाकखाने में खोजकर भेजा है।" रामदुलारी की धड़कनें तेज़ हो गईं। उसके कंपकंपाते हाथों ने चिट्ठी खोली—"माँ, मुझे माफ करना। मैं बहुत मुश्किल में हूँ। यहाँ लोगों की दुनिया पत्थर जैसी है। मैं लौटना चाहता हूँ, लेकिन मजबूर हूँ। तू बस मुझे अपने आशीर्वाद में रखना।"

रामदुलारी की आँखों से आँसू बहने लगे। कितनी रातें उसने जागकर बिताई थीं, सोचती थी कि मोहन उसे भूल गया। लेकिन यह चिट्ठी बता रही थी कि बेटा मजबूर था, न कि बेपरवाह। वह उस चिट्ठी को छाती से लगाए देर तक रोती रही। अब उसे एहसास हुआ कि दुनिया की भीड़ में मोहन खो गया था, लेकिन उसकी आत्मा माँ के पास ही थी।

वह मन ही मन सोचने लगी कि अगर यह चिट्ठी समय पर आ जाती, तो शायद उसका बेटा लौट आता। शायद वह उसकी मजबूरियों को समझ पाती। शायद वह उसे एक चिट्ठी और लिखने का हौसला दे पाती। लेकिन अब बहुत देर हो चुकी थी। आँसुओं से भीगी उस चिट्ठी को उसने अपने संदूक में रख लिया, जहाँ मोहन के बचपन की तस्वीरें थीं।

गाँव में यह खबर फैल गई कि रामदुलारी को मोहन की चिट्ठी मिल गई है। लेकिन अगले ही दिन, वह चारपाई पर शांत पड़ी मिली। उसका चेहरा संतोष से भरा था, मानो उस अंतिम चिट्ठी ने उसके जीवन की

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

अधूरी आस को पूरा कर दिया हो। गाँव वालों ने उसे गंगा किनारे जाकर अंतिम विदाई दी।

कुछ दिनों बाद, गाँव के किसी बालक ने उस संदूक को खोला और उसमें एक अधूरी चिट्ठी पाई—"प्यारे मोहन, तुझे लाखों बार चिट्ठी लिखी, लेकिन भेजने की हिम्मत नहीं हुई। बस यह जान ले, तेरा इंतज़ार ही मेरे जीने का सहारा था।" यह चिट्ठी जो कभी भेजी नहीं गई, वह दुनिया का सबसे दर्दनाक पत्र बन गई थी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

9. बूढ़ी आँखों का इंतज़ार

गाँव की संकरी गलियों में एक टूटी-फूटी झोंपड़ी थी, जिसकी दीवारों पर समय के घाव साफ़ झलकते थे। दरवाज़े पर एक चरमराती चौखट थी और उसके पीछे बैठी थी—अम्मा। सफ़ेद बालों की उलझी लटों में धूल जम चुकी थी, और आँखों की कोरें सूख चुकी थीं। उनका शरीर जैसे हड्डियों का ढांचा भर रह गया था, पर उनके दिल में अब भी एक उम्मीद की लौ टिमटिमा रही थी। रोज़ की तरह आज भी वे आँगन के एक कोने में बैठी थीं, राह तक रही थीं—अपने बेटे की, जिसने बरसों पहले शहर जाकर कभी लौटकर न देखा। गाँव के बच्चे, जो कभी उनकी गोद में खेले थे, अब जवान हो चुके थे, पर अम्मा वहीं की वहीं थीं, अपने बेटे की प्रतीक्षा में।

बरसों पहले जब रामू शहर गया था, तो वह सपनों का सौदागर बनकर लौटा था। हाथ में नौकरी का नियुक्ति-पत्र, आँखों में बड़े सपने, और मन में अम्मा को एक नई दुनिया दिखाने की ललक थी। जाते समय उसने अम्मा से वादा किया था, "बस कुछ ही साल अम्मा, फिर तुम्हें भी शहर ले जाऊँगा। वहाँ बड़ा मकान लूँगा, खूब सुख-सुविधा होगी, तुम्हें अब तक जितनी तकलीफें उठानी पड़ी हैं, सबका हिसाब चुका दूँगा।" अम्मा की आँखों में उम्मीद के दीये जल उठे थे। लेकिन वह "कुछ ही साल" धीरे-धीरे दस, पंद्रह, बीस सालों में बदल गया। समय का पहिया घूमता गया, पर रामू का कोई संदेश न आया। अम्मा के हाथों में अब भी वह पत्र था, जिसे रामू ने पहली और आखिरी बार लिखा था।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

गाँव वालों ने कई बार अम्मा को समझाया, "अम्मा, अब उम्मीद छोड़ दो। जो बेटा बीस साल में एक बार भी न आया, वह अब क्या आएगा?" लेकिन अम्मा की आँखों में उम्मीद अब भी ज़िंदा थी। वे रोज़ शाम को दरवाज़े पर बैठ जातीं, आँखें सड़क पर गड़ा देतीं, जैसे कोई परछाईं भी न छूटने पाए। कोई बैलगाड़ी गाँव में आती, तो वे आँखें चौड़ी कर उसे देखने लगतीं, कोई नई कार रुकती, तो मन ही मन प्रार्थना करने लगतीं कि शायद उनका बेटा ही आया हो। पर हर बार निराशा ही हाथ लगती। कभी-कभी उनकी आँखें छलक पड़तीं, पर फिर अपने आँचल से आँसू पोंछकर वही पुराना दिलासा देतीं—"आज नहीं तो कल ज़रूर आएगा।"

रामू अब शहर का बड़ा आदमी बन चुका था। ऊँची इमारत में आलीशान घर, हाथ में महँगी घड़ी, और जीवन में दिखावे की चकाचौंध थी। पत्नी और बच्चे अब उसके जीवन के केंद्र थे। गाँव और अम्मा की यादें किसी धुंधले आईने की तरह पीछे छूट चुकी थीं। जब कभी बचपन की स्मृतियाँ दिल के किसी कोने में दस्तक देतीं, तो वह खुद को काम में उलझा लेता। कई बार पत्नी से कहता, "सोच रहा हूँ एक बार गाँव जाकर अम्मा को ले आऊँ," लेकिन फिर कोई बहाना बनाकर टाल देता। धीरे-धीरे अम्मा की छवि उसके मन में धुंधली पड़ती गई।

एक दिन अम्मा बहुत बीमार पड़ गईं। गाँव के लोगों ने रामू को खबर भिजवाई, पर उसका जवाब आया—"अभी काम में बहुत व्यस्त हूँ, समय मिलते ही आऊँगा।" समय...? जिसे अम्मा ने सालों से अपने जीवन का सबसे अनमोल मोती समझकर बचाए रखा था, वही समय अब उनका गला घोंट रहा था। वे धीरे-धीरे बुझ रही थीं, लेकिन फिर भी दरवाज़े की ओर आँखें लगाए रहीं।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

अंततः एक दिन गाँव की हवाओं में सन्नाटा छा गया। अम्मा की साँसें थम चुकी थीं। उनकी बूढ़ी आँखें खुली की खुली रह गईं, जैसे अब भी किसी की प्रतीक्षा कर रही हों। गाँव वालों ने उनके निर्जीव शरीर को देखा, पर उनके चेहरे पर अजीब-सी शांति थी—जैसे उन्होंने अब भी उम्मीद नहीं छोड़ी हो। उन्हें उसी घर के आँगन में दफ़ना दिया गया, जहाँ वे सालों तक अपने बेटे की राह देखती रहीं।

रामू जब गाँव पहुँचा, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। उसने देखा, वही टूटी-फूटी झोंपड़ी, वही आँगन, बस अब वहाँ अम्मा नहीं थीं। आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। वह वहीं ज़मीन पर गिर पड़ा और फफक-फफक कर रो पड़ा। लेकिन अब अम्मा सुनने के लिए नहीं थीं। उनके इंतज़ार की घड़ियाँ समाप्त हो चुकी थीं, और उनके सपनों की डोर टूट चुकी थी।

उस रात, जब रामू अपनी माँ की कब्र के पास बैठा था, तो उसे ऐसा लगा जैसे अम्मा की आवाज़ हवा में गूंज रही हो—"आज नहीं तो कल ज़रूर आएगा।" लेकिन अब बहुत देर हो चुकी थी। बूढ़ी आँखों का इंतज़ार, आखिरकार, अधूरा ही रह गया था।

10.अलविदा

गाँव सूरज ढलने को था। आकाश में लालिमा छा रही थी, मानो प्रकृति भी किसी पीड़ा में डूबी हो। बनवारी चौधरी अपनी खाट पर बैठा दूर क्षितिज को निहार रहा था। उसका चेहरा झुर्रियों से भरा था, लेकिन उन झुर्रियों के बीच एक अजीब-सी उदासी बसी थी। आज का दिन उसके जीवन का सबसे कठिन दिन था। उसकी आँखों में गहराते अंधकार की छाया स्पष्ट दिख रही थी।

गाँव के चौपाल से ढोलक और बांसुरी की आवाजें आ रही थीं। पड़ोस के घरों में चहल-पहल थी, लेकिन बनवारी के घर में एक अजीब-सा सन्नाटा पसरा था। उसकी पत्नी रुक्मिणी को आज भी विश्वास नहीं हो रहा था कि उनका इकलौता बेटा मोहन, जिसे उन्होंने अपनी हर साँस से पाला, शहर जा रहा था—शायद हमेशा के लिए!

मोहन के हाथ में एक पुराना झोला था, जिसमें उसकी माँ ने अपने हाथों से कुछ सूखी रोटियाँ और अचार रख दिया था। पिता ने उसे कई बार समझाने की कोशिश की थी कि गाँव छोड़कर जाना उचित नहीं, लेकिन शहर की चकाचौंध और नौकरी का लालच मोहन को बाँध चुका था। उसने ठान लिया था कि चाहे कुछ भी हो जाए, वह गाँव नहीं लौटेगा।

रुक्मिणी बार-बार बेटे का हाथ पकड़ती और रो पड़ती, "बेटा, शहर में अपना ख्याल रखना, रोज़ भगवान का नाम लेना, और हाँ, जब भी मन करे, आ जाना। तेरी माँ तुझे देखने के लिए तरस जाएगी।" मोहन के

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

दिल में एक टीस उठी, लेकिन वह अपनी माँ को दिलासा देने के बजाय बस एक फीकी मुस्कान दे पाया।

बनवारी ने अपने कांपते हाथों से बेटे के कंधे पर हाथ रखा और गहरी आवाज़ में कहा, "बेटा, यहाँ खेत हैं, बैल हैं, घर है, माँ है... शहर में तुझे यह सब कहाँ मिलेगा? पैसे कमाने के चक्कर में मत पड़, सुख यहीं है।" लेकिन मोहन इन बातों से अब ऊब चुका था। उसने झटके से पिता का हाथ हटाया और बिना पीछे देखे आगे बढ़ गया। माँ-बाप की आँखों में आँसू थे, लेकिन मोहन की आँखों में सपनों की चमक थी।

ट्रेन स्टेशन पर पहुँचते ही मोहन ने राहत की साँस ली। गाँव की संकीर्ण गलियों से निकलकर अब वह एक नई दुनिया में प्रवेश करने जा रहा था। उसने मन ही मन सोचा, "अब मुझे अपने पैरों पर खड़ा होना है, अब रोने-धोने का समय नहीं।" ट्रेन आई, वह चढ़ गया, और देखते ही देखते गाँव पीछे छूट गया।

शहर में पहुँचकर मोहन ने खुद को एक छोटे से कमरे में पाया, जहाँ दीवारें सीलन से भरी थीं और खिड़की से बाहर सिर्फ़ ऊँची इमारतें दिखती थीं। उसने नौकरी की तलाश शुरू की। संघर्ष तो था, पर नौकरी मिल ही गई। पैसे कमाने लगा, लेकिन समय के साथ उसकी ज़िंदगी भागदौड़ में उलझ गई।

वह सुबह जल्दी उठता, काम पर जाता, देर रात लौटता, और इस दौड़ में उसकी संवेदनाएँ कहीं खो गईं। माँ-पिता की यादें कभी-कभी बेचैन कर देतीं, लेकिन व्यस्तता ने उसे धीरे-धीरे संवेदनहीन बना दिया।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

सालों बीत गए। उसने गाँव की तरफ़ देखा तक नहीं। ना कोई चिट्ठी, ना कोई संदेश। माँ-पिता इंतजार करते रहे, पर समय के साथ उनका मन बुझता गया।

एक दिन अचानक गाँव से एक पत्र आया। पिता नहीं रहे। माँ अकेली थी। मोहन के पाँव तले ज़मीन खिसक गई। उसके अंदर कुछ टूट गया।

वह दौड़ता हुआ गाँव पहुँचा, लेकिन घर की चौखट पर खड़े होकर उसे एहसास हुआ—वह सिर्फ़ शरीर से लौटा था, आत्मा से नहीं। माँ ने उसे देखा, पर अब वह रोई नहीं। बस धीरे से कहा, "अलविदा, बेटा! तेरा गाँव तुझे कब का छोड़ चुका है..."

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

11. एक दर्द जो ज़िन्दगी भर साथ रहा

अस्पताल सर्दियों की एक शाम थी। कोहरा इतना घना था कि सामने का रास्ता भी ठीक से नहीं दिख रहा था। रेलवे स्टेशन पर भीड़भाड़ कम थी, बस इक्का-दुक्का लोग किसी ट्रेन का इंतजार कर रहे थे। उन्हीं में से एक था अनिरुद्ध, एक 35 वर्षीय साधारण सा आदमी, जिसकी आंखों में उदासी और चेहरे पर बेजान सी मुस्कान थी।

अनिरुद्ध हर रोज़ इसी समय स्टेशन आता था, उसी बेंच पर बैठता था और आने-जाने वाली ट्रेनों को एकटक निहारता रहता था। लोग सोचते थे कि शायद वह किसी ट्रेन का इंतजार कर रहा है, पर उसकी नजरें तो किसी और को खोज रही थीं। किसी को जो शायद कभी लौटकर नहीं आएगा।

अनिरुद्ध की कहानी कुछ साल पहले शुरू हुई थी, जब वह एक छोटी सी कंपनी में अकाउंटेंट था। उसकी शादी रिया से हुई थी, जो उसके जीवन की सबसे बड़ी खुशी थी। दोनों के बीच गहरा प्रेम था, और उनकी दुनिया बस एक-दूसरे के इर्द-गिर्द घूमती थी।

रिया को सफर करना बहुत पसंद था। शादी के बाद वे अक्सर नई जगहों पर घूमने जाते, अनजान गलियों में खो जाते और नई यादें

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

संजोते। लेकिन एक सफर उनकी जिंदगी का सबसे बड़ा दुःस्वप्न बन जाएगा, यह उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था।

रिया कोलकाता में अपनी माँ से मिलने गई थी और वादा किया था कि वह अगले रविवार की सुबह लौट आएगी। अनिरुद्ध ने खुद टिकट बुक किया था। लेकिन वह रविवार उसकी जिंदगी का सबसे काला दिन बन गया।

ट्रेन पटरी से उतर गई थी। एक भयावह दुर्घटना जिसमें कई लोग मारे गए, और कई घायल हुए। अनिरुद्ध ने खबर सुनते ही स्टेशन की ओर दौड़ लगाई थी। लेकिन जब वह वहाँ पहुँचा, तब तक सब कुछ खत्म हो चुका था। रिया हमेशा के लिए उसे छोड़कर जा चुकी थी।

उस दिन के बाद से अनिरुद्ध की दुनिया बदल गई। हर चीज़ बेरंग लगने लगी। उसने अपनी नौकरी छोड़ दी, दोस्तों से मिलना-जुलना बंद कर दिया और खुद को इस दुनिया से अलग कर लिया।

हर शाम वह उसी रेलवे स्टेशन पर जाता, उसी बेंच पर बैठता, और उन पटरियों को देखता जहाँ से रिया की आखिरी ट्रेन गुज़री थी। उसकी आँखों में एक उम्मीद होती—शायद आज कोई चमत्कार हो जाए, शायद वह अचानक से लौट आए।

एक दिन, स्टेशन पर एक छोटी बच्ची खेलते हुए अनिरुद्ध के पास आई। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में जिज्ञासा थी।

"अंकल, आप हर रोज़ यहाँ क्यों आते हैं?" उसने मासूमियत से पूछा।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

अनिरुद्ध थोड़ी देर तक चुप रहा, फिर धीरे से मुस्कुराया। "किसी का इंतजार कर रहा हूँ," उसने धीरे से कहा।

"कौन?" बच्ची ने और उत्सुकता से पूछा।

अनिरुद्ध के होंठ काँपे, आँखें नम हो गईं, लेकिन उसने कुछ नहीं कहा। बच्ची हँसते हुए दौड़कर अपनी माँ के पास चली गई, लेकिन अनिरुद्ध की आँखों में अब भी वही अधूरी मुस्कान थी।

समय बीतता गया। धीरे-धीरे, अनिरुद्ध को अहसास हुआ कि रिया अब केवल यादों में है, और उसे अपनी ज़िन्दगी फिर से जीनी होगी।

एक दिन, उसने अपनी पुरानी डायरी खोली, जिसमें उसने रिया के साथ बिताए हर पल को संजो कर रखा था। एक पन्ने पर रिया ने लिखा था— *"जिंदगी एक सफर है, और हर सफर का एक अंत जरूर होता है, लेकिन जब तक हम जिंदा हैं, हमें इस सफर को खूबसूरती से जीना चाहिए।"*

यह पढ़ते ही अनिरुद्ध की आँखों में आँसू आ गए, लेकिन इस बार वे आँसू दर्द के नहीं, बल्कि नए सवेरे की उम्मीद के थे। उसने उस दिन स्टेशन जाना छोड़ दिया।

अनिरुद्ध ने फिर से अपनी जिंदगी को संवारने का फैसला किया। उसने एक अनाथालय में बच्चों को पढ़ाने का काम शुरू किया। उन मासूम चेहरों की मुस्कान में उसने अपनी रिया की मुस्कान देखी, जो अब भी उसके दिल में जिंदा थी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

हर दर्द का अंत होता है, बस हमें उसे अपनाने और आगे बढ़ने की हिम्मत रखनी होती है। और अनिरुद्ध ने आखिरकार वह हिम्मत जुटा ली थी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

12. सपनों का मलबा

रात की कालिमा में एक बूढ़े आदमी की परछाई थरथरा रही थी। टूटी-फूटी झोपड़ी के बाहर वह एक चारपाई पर बैठा था। चेहरे की झुर्रियों में जीवन के संघर्षों की कहानियाँ दबी थीं। उसकी आँखें एक अधजले मकान की ओर टिकी थीं, जिसे कभी उसने अपने हाथों से बनाया था। पर आज वहाँ केवल राख, टूटी ईंटें और बिखरी हुई लकड़ियाँ पड़ी थीं। रामखिलावन की आँखों से आँसू बह निकले, जैसे मन के घाव फिर से हरे हो गए हों।

एक समय था जब इस मकान की नींव रखते हुए उसने सपने देखे थे। वह एक मामूली किसान था, पर मेहनती और ईमानदार। अपनी पत्नी और बेटे के साथ उसने वर्षों तक पाई-पाई जोड़कर यह मकान बनाया था। मिट्टी से बने इस घर की हर ईंट उसके पसीने और सपनों की गवाह थी। जब पहली बार उसकी पत्नी, गंगाजली, इस घर में आई थी, तो उसकी आँखों में खुशियों की चमक थी। रामखिलावन को लगता था कि अब उसकी ज़िंदगी सुकून से कटेगी।

लेकिन सुख का यह सपना ज्यादा दिन टिक न सका। गाँव में जात-पात, अमीरी-गरीबी की खाई गहरी थी। रामखिलावन की मेहनत देखकर गाँव के जमींदार रघुवंशी बाबू की भौहें तन गई थीं। उसे पसंद नहीं था कि एक गरीब किसान उसके बराबरी में सिर उठाए। उसने कई बार रामखिलावन को धमकाया, पर वह अपनी ज़मीन छोड़ने को तैयार न था।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

वह जानता था कि यह ज़मीन ही उसकी पहचान है, उसके पूर्वजों की निशानी है।

फिर एक रात कयामत बनकर आई। जब रामखिलावन खेतों से लौटा तो उसने देखा कि उसका घर आग की लपटों में घिरा हुआ था। चारों ओर सिर्फ चीखें और लपटें थीं। उसकी पत्नी और बेटा अंदर फंसे थे। उसने आग में कूदने की कोशिश की, पर गाँव वालों ने उसे पकड़ लिया। "तू जलेगा, बऊ!" किसी ने कहा। लेकिन वह जल ही तो रहा था—अपने सपनों के मलबे में, अपनी दुनिया की राख में। अगली सुबह, राख के ढेर से अपनी पत्नी और बेटे के जले हुए शव निकालते समय उसका मन भी जल चुका था।

रामखिलावन अब अकेला था। उसके पास रहने को घर नहीं, खाने को अनाज नहीं, और सबसे बड़ी बात—सपने देखने की हिम्मत नहीं। उसने पंचायत से न्याय की गुहार लगाई, पर जमींदार के आदमी हर जगह फैले थे। कोई उसकी सुनने को तैयार न था। एक दिन उसने दरबार में जमींदार के पैरों में गिरकर कहा, "बाबू, मेरे घर को जलाने में तुम्हारा हाथ था, पर मेरा बेटा और मेरी गंगाजली क्यों ले गए?"

रघुवंशी बाबू ठहाका मारकर हँसा, "तू गरीब आदमी, तेरा घर, तेरी औकात—सब मेरी मुट्ठी में हैं। अब चला जा, नहीं तो तुझे भी उसी आग में जला दूँगा।" रामखिलावन ने आकाश की ओर देखा, जैसे पूछ रहा हो—क्या यही न्याय है? क्या गरीब आदमी को सपने देखने का हक़ नहीं?

रामखिलावन को लगा कि इस दुनिया में उसकी कोई जगह नहीं रही। वह गाँव छोड़कर निकल पड़ा। चलते-चलते वह एक सूखी नदी के किनारे बैठ गया। उसे लगा कि उसके जीवन की धारा भी इसी नदी की तरह

सूख चुकी है। उसकी आँखें धीरे-धीरे मुंदने लगीं, और एक नन्हा सपना उसकी पलकों में तैरने लगा—एक ऐसा गाँव, जहाँ कोई गरीब का घर न जलाए, जहाँ हर कोई चैन से जी सके। लेकिन यह सपना भी उसकी टूटी सांसों के साथ ही बुझ गया। अगली सुबह, वहाँ केवल उसका निःजीव शरीर पड़ा था और पास में राख में मिला उसका स्वप्न।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

13. बेटा लौट आ...!

गाँव के आखिरी छोर पर स्थित छोटा-सा मिट्टी का घर, जिसके बाहर आम का घना पेड़ था, वहीं रहता था रामलाल। उम्र के आखिरी पड़ाव पर खड़ा यह किसान अब थक चुका था। जीवन की संध्या बेला में वह अकेला था, बस कुछ यादें और आँखों में आँसू थे। कभी यह घर हँसी-खुशी से भरा रहता था, पर अब सन्नाटे की चादर ओढ़े खड़ा था। उसकी इकलौती संतान मोहन, जिसे उसने बड़ी मन्नतों से पाया था, शहर की रंगीनियों में खो चुका था।

मोहन बचपन से ही होनहार था। स्कूल में हमेशा अव्वल आता, गाँव के सब लोग उसकी तारीफ किया करते। रामलाल ने खेतों में खून-पसीना बहाकर उसे पढ़ाया, अच्छे स्कूल में भेजा, और फिर शहर में कॉलेज की पढ़ाई के लिए भेज दिया। उसने सोचा था कि बेटा पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बनेगा और उनका सहारा बनेगा। पर नियति को कुछ और ही मंजूर था।

शहर की चकाचौंध और सुविधाओं ने मोहन को बदल दिया था। अब उसे गाँव पिछड़ा और उसके पिता दकियानूसी लगने लगे थे। शुरू में वह चिट्ठियाँ लिखा करता, फिर फोन आने लगे, और धीरे-धीरे वह भी बंद हो गया। रामलाल हर रोज शाम को घर के बाहर बैठकर राह तकता, उम्मीद करता कि बेटा कभी न कभी लौटेगा। पर दिन, महीने और साल बीतते गए, मोहन ने मुड़कर भी नहीं देखा।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

एक दिन पड़ोस के रामदीन ने खबर दी कि मोहन की शादी शहर में हो गई है। रामलाल को जैसे काठ मार गया। उसने सोचा था कि बेटा आएगा, आकर उसे बताएगा, अपने पिता का आशीर्वाद लेगा, पर वह तो पूरी तरह से अलग दुनिया में रम चुका था। रामलाल ने मन को समझाया – 'बेटे की खुशी में ही मेरी खुशी है।' मगर दिल की पीड़ा आँखों से बह निकली।

समय का पहिया घूमता रहा। रामलाल अब बूढ़ा और कमजोर हो चला था। शरीर जर्जर, आँखें धुंधली और पैर कांपने लगे थे। खेतों में जाने की ताकत न रही, घर की हालत भी जर्जर हो चली थी। एक दिन गाँव के सरपंच ने कहा, "बाबा, अपने बेटे को बुला लीजिए। अब आपकी देखभाल के लिए कोई तो चाहिए।" रामलाल ने फीकी हँसी हँसते हुए कहा, "बेटा अब लौटकर नहीं आएगा, उसकी दुनिया अलग है। गाँव की धूल भरी गलियों से अब उसे घिन आती होगी।"

पर मन तो पिता का था, आशा की लौ बुझी नहीं थी। उसने किसी तरह मोहन का पता निकाला और उसे पत्र लिखा – "बेटा, बहुत दिनों से तुझे देखा नहीं। आँखें तुझे देखने को तरस रही हैं। शरीर साथ नहीं दे रहा, अब शायद ज्यादा दिन न जी पाऊँ। बस एक बार आ जा, तुझे जी भरकर देख लूँ।"

पत्र भेजने के बाद रामलाल हर रोज दरवाजे पर बैठकर राह ताकता रहा। पर न कोई जवाब आया, न ही कोई संदेश। धीरे-धीरे उसकी उम्मीदें भी दम तोड़ने लगीं। एक दिन अचानक रामलाल खाट पर पड़ा मिला, आँखें बंद थीं, शरीर निष्प्राण। गाँववालों ने उसे अंतिम विदाई दी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

कुछ दिनों बाद शहर में बैठे मोहन को यह खबर मिली। वह दौड़ा-दौड़ा गाँव पहुँचा, पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी। मिट्टी की छोटी-सी मड़ैया, दरवाजे के बाहर आम का पेड़, और उस पर चहचहाते पंछी – सबकुछ वैसा ही था, बस वह पिता नहीं था, जो दरवाजे पर बैठकर उसकी राह देखता। मोहन फूट-फूटकर रो पड़ा, लेकिन अब पछताने से क्या होता? पिता की एक पुकार – 'बेटा लौट आ…' सदा के लिए अनसुनी रह गई।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

14. वह रात

पोता रात का तीसरा पहर था। गाँव के कोने में, जहाँ पगडंडी कच्ची सड़क से मिलती थी, वहाँ एक पुरानी टूटी-फूटी झोंपड़ी खड़ी थी। उसकी छत के कुछ हिस्से बरसात में गिर चुके थे और दीवारें इस कदर टेढ़ी हो चुकी थीं कि लगता था, अब गिरीं कि तब गिरीं। उसी झोंपड़ी में बैठी थी गौरी—एक बुढ़िया, जिसकी आँखें ज़िंदगी के सारे जुल्मों की गवाह बन चुकी थीं। उसके चेहरे पर झुर्रियों की अनगिनत रेखाएँ थीं, मानो हर रेखा उसके जीवन की एक पीड़ा को बयान कर रही हो। उसका बेटा रामलाल अभी तक घर नहीं लौटा था। बाहर ठंडी हवा चल रही थी, और दूर कहीं से कुत्तों के भौंकने की आवाज़ आ रही थी। गौरी के दिल की धड़कन बढ़ती जा रही थी। उसका मन अजीब-अजीब आशंकाओं से भर रहा था।

रामलाल दिनभर खेतों में मजदूरी करता था। उसके पिता वर्षों पहले बीमारी से चल बसे थे, और माँ-बेटे की दुनिया बस इस छोटी-सी झोंपड़ी में सिमटी थी। गौरी का पूरा जीवन इसी बेटे की परछाईं बनकर बीता था। उसकी हर साँस, हर दुआ सिर्फ अपने बेटे के लिए थी। लेकिन आज, रात आधी से ज़्यादा बीत चुकी थी और रामलाल का कोई पता नहीं था। रोज़ शाम को वह समय से आ जाता था, फिर आज कहाँ रह गया? गौरी ने घर से बाहर झाँका। अँधेरा घना था, और ठंडी हवा हड्डियों तक चुभ रही थी। उसका मन अधीर हो उठा।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

गौरी का धैर्य अब जवाब देने लगा था। उसने अपनी फटी साड़ी को कसकर लपेटा और लड़खड़ाते कदमों से बाहर निकल पड़ी। गाँव की पगडंडी पर चलते हुए उसके पैर काँप रहे थे। चारों ओर सन्नाटा पसरा था। हर घर के दरवाज़े बंद थे, हर आँगन खामोश। वह मंदिर के पास पहुँची, जहाँ अक्सर गाँव के लोग दिन में बैठकर बातें करते थे। वहाँ कुछ आवारा कुत्ते सोए पड़े थे, लेकिन इंसानों का नामोनिशान नहीं था। तभी उसे दूर किसी के बोलने की धीमी आवाज़ सुनाई दी। उसने कान लगाकर सुना—कोई आदमी था, जो शराब के नशे में ऊँची आवाज़ में बड़बड़ा रहा था।

गौरी का दिल बैठ गया। वह तेज़ कदमों से उस दिशा में बढ़ी। जैसे ही वह पास पहुँची, उसकी आँखें फटी रह गईं। सामने उसका रामलाल पड़ा था—मिट्टी में लथपथ, बेहोश, शरीर पर कई जगह चोटों के निशान। उसके पास शराब की टूटी हुई बोतल पड़ी थी। गौरी घबराकर उसके पास बैठ गई। "रामलाल! बेटा! आँखें खोल!" उसने काँपती आवाज़ में कहा। लेकिन रामलाल की आँखें बंद थीं। उसके होंठ सूख चुके थे, साँसें धीमी हो चली थीं। गौरी ने उसे झकझोरा, लेकिन कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली।

गौरी के मन में तूफान उमड़ पड़ा। यह क्या हो गया? उसका रामलाल इस हाल में क्यों पड़ा है? कौन था जिसने उसके बेटे को इस हालत में पहुँचा दिया? उसकी आँखों में आँसू भर आए। उसने बेटे को अपने कंधे पर उठाने की कोशिश की, लेकिन उसकी बूढ़ी देह में इतनी ताकत कहाँ थी! वह चीख पड़ी—"कोई है? कोई मदद करो!" लेकिन रात के उस सन्नाटे में उसकी आवाज़ बस हवा में घुलकर रह गई।

गौरी ने हिम्मत नहीं हारी। घसीटते हुए, लड़खड़ाते कदमों से वह रामलाल को घर की ओर ले जाने लगी। उसकी आँखों से आँसू लगातार

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

बह रहे थे। हर कदम पर उसका शरीर जवाब दे रहा था, लेकिन वह रुकी नहीं। किसी तरह वह झोंपड़ी तक पहुँची। बेटे को चटाई पर लिटाया और उसके चेहरे पर पानी के छींटे मारे। कुछ देर बाद रामलाल की साँसों में हरकत हुई। उसने आँखें खोलीं और माँ को देखते ही फफककर रो पड़ा— "माँ... मुझे माफ कर दो।"

गौरी की आँखों में आश्चर्य और पीड़ा का मिश्रण था। उसने बेटे के सिर पर हाथ फेरा, "क्या हुआ बेटा? किसने तुझे इस हालत में पहुँचाया?" रामलाल ने आँखें बंद कर लीं, मानो कुछ कहने की हिम्मत न हो। फिर रुंधे गले से बोला—"माँ, मैंने ही अपनी ज़िंदगी बर्बाद कर ली। खेत के मालिक से एडवांस पैसे लिए थे, लेकिन जुए में हार गया। मालिक ने अपने गुंडों से मुझे पिटवाया और सड़क पर फेंक दिया।" यह सुनते ही गौरी की आँखों में अंधेरा छा गया। वह गिरते-गिरते बची।

रात के उस अंधेरे में, उस टूटी-फूटी झोंपड़ी में, एक माँ अपने बेटे को सीने से लगाए बैठी थी। आँसू उसकी आँखों से थमने का नाम नहीं ले रहे थे। बेटे की बेबसी और अपनी लाचारी उसे भीतर तक तोड़ रही थी। लेकिन फिर भी, उसने अपना हाथ रामलाल के सिर पर रखा और कांपती आवाज़ में कहा—"कुछ भी हो, बेटा, मैं तेरा साथ कभी नहीं छोड़ूँगी।" बाहर हवा अभी भी ठंडी थी, लेकिन उस झोंपड़ी के अंदर एक माँ का प्यार, उसकी ममता और उसकी आँसू भरी ममता की गर्माहट हर ठंड को मात दे रही थी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

15. पत्थर बन चुकी माँ

गर्मियों की दोपहर थी। सूरज अपनी पूरी तपिश के साथ आकाश में विराजमान था। गाँव की संकरी गलियों में धूल के गुबार उठ रहे थे। कहीं-कहीं खेतों में काम करते किसान पसीने से लथपथ होकर अपने बैलों के साथ संघर्षरत थे।

बिसेसर तेजी से नदी के किनारे की ओर बढ़ रहा था। उसके कंधे पर उसकी माँ सुमित्रा थीं। माँ की आँखों में कोई भाव नहीं था। वह पत्थर की तरह निर्जीव लग रही थीं, जैसे जीवन के सारे रंग उनसे छिन चुके हों। लेकिन बिसेसर की आँखों में आँसू थे। उसकी माँ, जिसने उसे गोद में खिलाया था, आज उसके लिए एक अबूझ पहेली बन गई थी।

बचपन में बिसेसर ने अपनी माँ को गाँव की सबसे दयालु महिला के रूप में देखा था। सुमित्रा न केवल अपने परिवार के लिए समर्पित थीं, बल्कि गाँव भर की माँ थीं। वह दूसरों के दुख को अपना दुख समझती थीं। अगर किसी के घर चूल्हा नहीं जलता, तो वह अपनी रसोई से भोजन भेज देतीं। अगर कोई अनाथ बच्चा रोता, तो वह उसे अपने आँचल में समेट लेतीं। गाँव में हर त्योहार पर वह सबसे आगे रहतीं। उनकी हँसी, उनका अपनापन, उनकी ममता—सब कुछ गाँव की धड़कन थी। लेकिन फिर अचानक, उनकी ज़िंदगी ने करवट ली।

जब बिसेसर का पिता एक दुर्घटना में चल बसा, तो सुमित्रा की दुनिया उजड़ गई। उनके लिए यह केवल पति को खोने का दुःख नहीं था,

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

बल्कि समाज के ताने, अकेलापन, और जीवन की कठोर सच्चाइयाँ थीं, जो अब उनके हिस्से आईं। बिसेसर तब छोटा था, लेकिन उसने महसूस किया था कि कैसे उसकी माँ धीरे-धीरे बदल रही थीं। वह चुप रहने लगी थीं, उनका हँसता-मुस्कुराता चेहरा अब गंभीर हो गया था।

फिर, जब बिसेसर बड़ा हुआ, उसने शहर जाने का फैसला किया। उसने सोचा था कि वह नौकरी करेगा और अपनी माँ को हर सुख देगा, लेकिन शहर की चकाचौंध में वह अपनी जड़ों को भूलने लगा।

सुमित्रा के लिए यह अकेलापन असहनीय था। बेटे के बिना घर सूना लगने लगा। गाँव की चहल-पहल भी उन्हें अच्छी नहीं लगती थी। वह कभी-कभी चिट्ठियाँ लिखतीं, लेकिन उन चिट्ठियों का कोई जवाब नहीं आता। धीरे-धीरे वह लोगों से कटने लगीं। वह घंटों नदी किनारे बैठी रहतीं, पत्थरों को जल में फेंकतीं, खुद से बातें करतीं। गाँव के लोग उन्हें पागल समझने लगे।

शहर में बिसेसर की दुनिया अलग थी। वह अपने परिवार में व्यस्त था। उसकी माँ की तस्वीर उसके मन में धुँधली होती गई। वह त्योहारों पर कभी-कभी पैसे भेज देता, लेकिन खुद कभी वापस नहीं आया।

एक दिन गाँव से एक संदेश आया—"तेरी माँ मरने वाली है, आकर देख ले।"

बिसेसर दौड़ा-दौड़ा गाँव पहुँचा। लेकिन उसकी माँ ने उसकी ओर देखा तक नहीं। वह निर्जीव पड़ी रहीं। उसने माँ को गले लगाना चाहा, पर वे किसी पत्थर की मूरत की तरह निष्क्रिय रहीं। उसने माँ को डॉक्टर के पास ले जाने का निर्णय लिया।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

शहर में डॉक्टरों, झाड़-फूँक, और मंदिरों के चक्कर काटे गए, लेकिन माँ की स्थिति जस की तस रही। वह न रोतीं, न हँसतीं, न बोलतीं।

एक दिन बिसेसर अपनी माँ को लेकर नदी किनारे गया। वही नदी, जहाँ वह बचपन में माँ के साथ खेला करता था। उसने माँ के चरणों में सिर रखकर कहा, "माँ, मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। मुझे माफ कर दो।"

माँ के चेहरे पर कोई भाव नहीं आया। बिसेसर रोता रहा, गिड़गिड़ाता रहा, लेकिन माँ की आँखों में कोई नमी नहीं थी।

तभी अचानक, माँ ने एक पत्थर उठाया और जल में फेंक दिया। बिसेसर की आँखें आश्चर्य से फैल गईं। वर्षों बाद उसकी माँ ने कोई हरकत की थी। लेकिन तभी उसकी आँखों से आँसू झरने लगे।

उस दिन बिसेसर को समझ आया कि उसकी माँ केवल उसी से नहीं, बल्कि पूरे संसार से टूट चुकी थीं। उनका मन इतना कठोर हो चुका था कि अब उसमें कोई दर्द समाने की जगह नहीं बची थी। वह सचमुच पत्थर बन चुकी थीं।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

16. उसकी शादी का कार्ड और मेरा इंतजार

सर्दियों की वह धुंधली सुबह थी, जब दरवाजे पर दस्तक हुई। अलसाई आँखों से बाहर झाँका तो देखा, डाकिया खड़ा था। उसके हाथ में एक लिफाफा था, जिसे पकड़ते ही मेरी उंगलियों में हल्की सिहरन दौड़ गई। वह हल्के से मुस्कराया, लेकिन उसकी मुस्कान में कुछ अनकहा छिपा था। मेरे हाथ काँप उठे, मन में अनजाना भय घर कर गया। मैंने धीरे-धीरे लिफाफा खोला और भीतर से एक चमचमाता निमंत्रण पत्र निकला। सुनहरे अक्षरों में लिखा था— "सादर आमंत्रण!" यह उसका विवाह का निमंत्रण था।

वह पत्र मेरे हाथों में काँप रहा था, लेकिन असल में मैं ही काँप रहा था। मेरी दृष्टि उन अक्षरों पर टिक गई, पर वे धुंधले पड़ चुके थे— शायद आँखों में भर आए आँसुओं की वजह से। एक अजीब-सी पीड़ा ने मन को जकड़ लिया। मेरे कानों में उसकी हँसी गूंजने लगी, आँखों के सामने वे बीते दिन तैरने लगे, जब हम घंटों बातें करते थे, साथ हँसते थे, सपने बुनते थे। लेकिन यह सपना शायद केवल मेरा था। उसने तो अपने जीवन का नया अध्याय लिख लिया था, और मैं अब भी बीते पन्नों में उलझा था।

मैंने पत्र को धीरे से मेज पर रख दिया और कुर्सी पर बैठ गया। दिल के भीतर एक हूक उठी, मानो किसी ने नश्तर चुभो दिया हो। याद आया वह पहला दिन जब कॉलेज के गलियारों में हमारी मुलाकात हुई थी। वह किताबों में खोई हुई थी और मैं उसकी दुनिया में खो गया था। हम

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

साथ-साथ बड़े हुए, एक-दूसरे को समझने लगे। लेकिन शायद यह मेरी भूल थी कि मैंने उसके मन को अपने जैसा समझ लिया। मुझे लगा था कि हमारे बीच जो था, वह प्रेम था। पर शायद यह एकतरफा था, एक ऐसा एहसास जिसे सिर्फ मैंने जिया था।

समय कभी नहीं ठहरता। उसकी दुनिया में बदलाव आ गया, लेकिन मेरी दुनिया वहीं ठहरी रही। मैं अब भी वही गलियाँ नापता, जहाँ कभी उसके कदमों की आहट सुनी थी। उसकी बातें अब भी मेरे कानों में गूंजतीं, उसकी मुस्कान अब भी मेरी यादों में बसी थी। पर अब वह मेरी नहीं थी, न कभी होगी। यह कड़वी सच्चाई मेरे दिल को अंदर तक चीर रही थी। लेकिन मैं कर भी क्या सकता था? प्रेम जब अधूरा रह जाए, तो उसकी सबसे बड़ी सजा यही होती है कि वह स्मृतियों में अमर हो जाता है।

शादी का दिन आया। मैंने खुद को रोका, पर दिल नहीं माना। एक बार उसे देखने की इच्छा मन के हर तर्क से भारी पड़ गई। मैं शादी में पहुँचा, लेकिन वहाँ की चमक-दमक से दूर एक कोने में खड़ा रहा। वह दुल्हन बनी खड़ी थी— ठीक वैसी जैसी मैंने कल्पना की थी, लेकिन उसकी मुस्कान अब किसी और के लिए थी। उसने एक बार मेरी ओर देखा, उसकी आँखों में भी कुछ था— शायद एक अधूरा अहसास, शायद न कहे गए शब्दों की बेचैनी। पर अब कुछ भी कहना व्यर्थ था।

मैं चुपचाप वहाँ से निकल आया। शहर की गलियाँ वैसी ही थीं, लेकिन मैं बदल चुका था। उस रात मैंने बहुत रोया, लेकिन आँसू कोई हल नहीं थे। धीरे-धीरे एक एहसास हुआ— प्रेम सिर्फ पाने का नाम नहीं, बल्कि स्वीकार करने का नाम भी है। मैंने उसके निमंत्रण पत्र को जलते हुए देखा।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

उसकी राख मेरे हाथों पर गिरी, लेकिन अब दर्द नहीं हुआ। शायद यह मेरी आत्मा की आखिरी चीख थी, जो उसी राख के साथ बुझ गई।

समय बीतता गया, लेकिन मैं पीछे छूट गया। हर दिन की शुरुआत उसी कसक के साथ होती और रातें उसी अधूरेपन के एहसास में डूब जातीं। लेकिन एक दिन मैंने सोचा— क्या मैं इसी दर्द में जीते रहूँगा? क्या प्रेम का अर्थ केवल पीड़ा सहना है? नहीं। प्रेम में यदि विरह है, तो उसमें एक नई शुरुआत की संभावना भी है। मैंने अपने जख्मों को शब्दों में ढालना शुरू किया। मेरी कलम वह सब कहने लगी, जो मैं कह नहीं पाया था।

आज जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो एहसास होता है कि वह शादी का कार्ड केवल एक निमंत्रण नहीं था, वह एक सबक था। यह समझाने के लिए कि कुछ रिश्ते केवल यादों के लिए होते हैं, संग जीने के लिए नहीं। उसने अपने जीवन की राह चुन ली थी, और अब मेरी बारी थी। मैंने भी अपनी राह पकड़ ली। उसका इंतजार अब भी है, लेकिन एक अलग रूप में— एक मीठे दर्द की तरह, जिसे मैंने अपनी कहानियों में अमर कर दिया है।

हर प्रेम कहानी का सुखद अंत नहीं होता, कुछ कहानियाँ बस अधूरी रहकर ही मुकम्मल हो जाती हैं।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

17. सड़क किनारे पड़ी लाश

सर्दियों की वह भोर उदास थी। हल्की-हल्की कोहरे की चादर ने पूरे शहर को ढँक रखा था। सड़कें सुनसान थीं, बस कभी-कभी कोई मोटरगाड़ी गुज़रती और सन्नाटे को चीरकर फिर कहीं गुम हो जाती। ठंडी हवा बदन को चीरती चली जा रही थी, मानो जीवितों को भी निर्जीव कर देने की कसम खा रखी हो। शहर के बाहरी छोर पर, जहाँ अमूमन राहगीर कम ही आते थे, वहाँ एक निर्जीव शरीर पड़ा हुआ था। किसी ने देखा भी, तो बस एक क्षणिक निगाह डालकर आगे बढ़ गया। कोई ठहरा नहीं, कोई रुका नहीं। शायद शहर की रफ्तार में इंसानियत कहीं पीछे छूट चुकी थी।

वह लाश एक वृद्ध की थी। सफेद दाढ़ी, फटे-मैले कपड़े, और पैरों में टूटी हुई चप्पलें। हाथ ठंड से अकड़ चुके थे, चेहरे पर झुर्रियों की गहरी लकीरें थीं, जो जीवन की कठोरता की कहानी बयां कर रही थीं। कोई नहीं जानता था कि वह कौन था, कहाँ से आया था, और कैसे यहाँ इस हालत में पड़ा था। शायद भूख ने उसके प्राण छीन लिए थे, या फिर ठंड ने उसे अपनी चपेट में ले लिया था। पर शहर के लिए यह बस एक और शव था—जिसे न कोई पहचानता था, न कोई जानना चाहता था।

चौक पर खड़ा पुलिस का जवान भी उसे देखकर गुज़र गया। एक क्षण को उसकी आँखों में संदेह की लकीरें उभरीं, लेकिन फिर वह अपने गर्म जैकेट को कसते हुए आगे बढ़ गया। "कोई भिखारी होगा, मरा तो हमें क्या?" उसके मन ने उसे निश्चिंत कर दिया। जीवन की आपाधापी में

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

सहानुभूति अब विलासिता बन चुकी थी, जिसे हर कोई वहन नहीं कर सकता था।

पास ही एक छोटी-सी चाय की दुकान थी, जहाँ कुछ लोग बैठे गर्म चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे। किसी ने लाश की ओर इशारा करते हुए पूछा, "कौन है यह?"

चाय वाले ने लापरवाही से जवाब दिया, "अरे, कोई फटेहाल बुज़ुर्ग होगा। ठंड में ठिठुर कर मर गया होगा।" फिर वह अपने गिलास धोने में लग गया। किसी ने भी उस शव को गौर से देखने की ज़हमत नहीं उठाई। लोगों के लिए यह एक आम घटना थी, जैसे सड़क पर पड़ी कोई टूटी-फूटी चीज़, जिसे बस पार कर जाना था।

परंतु, उसी भीड़ में एक व्यक्ति ऐसा था, जिसकी आँखों में अब भी इंसानियत की लौ टिमटिमा रही थी। वह दुबला-पतला, मैले कपड़ों में लिपटा व्यक्ति धीरे-धीरे उस शव की ओर बढ़ा। उसके कदम भारी थे, पर दिल में कुछ कर गुजरने का साहस था। वह वृद्ध के पास जाकर बैठ गया और कांपते हाथों से उसके जमे हुए चेहरे को छुआ। एक ठंडी सिहरन उसके शरीर में दौड़ गई, लेकिन उसने अपना हाथ नहीं हटाया। उस चेहरे पर अब भी कोई कहानी थी, कोई दर्द था, कोई पुकार थी।

उसकी आँखें भर आई। वह नहीं जानता था कि यह अजनबी कौन था, लेकिन उसे महसूस हुआ कि यह कोई पराया नहीं, बल्कि उसका अपना कोई था—कोई पिता, कोई भाई, कोई भूला-बिसरा आत्मा, जिसे इस दुनिया ने ठुकरा दिया था। उसकी जेब में पड़े कुछ सिक्के खनक उठे। उसने वे सिक्के वृद्ध की ठंडी हथेलियों में रख दिए, जैसे अब भी उसकी मदद करना चाहता हो, जैसे अब भी उसे जीवित कर देना चाहता हो।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

उसने आसपास के लोगों से मदद की गुहार लगाई। "कोई है जो इस बुज़ुर्ग की अंतिम यात्रा में साथ दे?" पर सबने उसे पागल समझकर नज़रअंदाज़ कर दिया। किसी के पास समय नहीं था, किसी के पास संवेदना नहीं थी। यह शहर भागता था, रुकना यहाँ पाप था।

आख़िरकार, वह व्यक्ति अकेले ही उस शव को उठाकर पास के मंदिर के बाहर ले गया। उसने कुछ फूल खरीदे, कुछ अगरबत्तियाँ जलाईं, और ईश्वर से प्रार्थना की, "हे प्रभु, इस अभागे की आत्मा को शांति देना। इसे स्वर्ग में जगह देना। यह भी किसी का बेटा, किसी का पिता रहा होगा।" उसकी आँखों से आंसू बह निकले। अकेले ही उसने चिता सजाई, अकेले ही उसने विदाई दी।

शहर ने इस मृत्यु को नहीं जाना, लेकिन उस दिन इंसानियत मरते-मरते बच गई। एक आदमी था जिसने रुककर यह साबित किया कि संवेदना अभी पूरी तरह मरी नहीं है। सड़क किनारे पड़ी वह लाश अब बेनाम नहीं थी—क्योंकि उसे मरने के बाद भी किसी ने सम्मान दिया, उसे इंसान समझा। उस सुबह ठंड की चादर के बीच इंसानियत की आखिरी किरण फिर से थोड़ी-सी प्रज्ज्वलित हुई।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

18. बाबुल का आँगन और बेटी की चीखें

संध्या का समय था। गोधूलि की बेला में गाँव के चौपाल से बैलों की घंटियाँ और बच्चों की किलकारियाँ सुनाई दे रही थीं। परंतु, चौधरी रामसिंह के घर का माहौल सन्नाटे से भरा था। घर के आँगन में चूल्हा बुझा पड़ा था, और तुलसी के चौबारे पर कोई दीप जलाने वाला नहीं था। कारण था उनकी बेटी सुगंधा, जो ससुराल में जलकर राख हो गई थी।

रामसिंह को जैसे ही यह खबर मिली, उनके पैरों तले जमीन खिसक गई। उनका जी चाहता था कि दौड़कर अपनी बिटिया को देख आएँ, परंतु समाज के ठेकेदारों ने उन्हें बाँध रखा था। विधि-विधान का हवाला देकर, 'बेटी पराया धन होती है' का पाठ पढ़ाकर उन्हें बेबस बना दिया गया। उनकी पत्नी, कमला, जो अब तक सती-सावित्री की प्रतिमा बनी थी, बेटी की चीखों को अनसुना नहीं कर पाई। उसने बिलखते हुए कहा, "राम! हमारी सुगंधा को वे लोग खा गए!" और यह कहते-कहते वह मूर्छित हो गई।

सुगंधा बचपन से ही चंचल और संस्कारी थी। उसके कोमल हाथों से जब पहली बार रोटी बनी थी, तब रामसिंह ने गर्व से कहा था, "मेरी बिटिया तो साक्षात अन्नपूर्णा है!" परंतु वही बेटी जब ससुराल गई तो वहाँ की भूख ने उसे निगल लिया। दहेज की आग में उसकी मुस्कान जल गई, उसका बचपन जल गया, और अंत में उसकी साँसें भी जल गईं।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

ससुराल में जब पहली बार दहेज का मुद्दा उठा था, तब सुगंधा ने अपने पति से कहा था, "सुरेश, क्या प्यार का कोई मोल होता है? क्या मैं तुम्हारे लिए कम हूँ?" परंतु सुरेश, जो अपनी माँ के इशारों पर नाचता था, ने तिरस्कार करते हुए कहा था, "तुम्हारे बाप ने तो हमें धोखा दिया! अब बिना पैसे के हम तुम्हें क्यों रखें?"

सुगंधा की हर चीख दीवारों से टकराकर लौट आती थी। जब पहली बार उसके गालों पर थप्पड़ पड़ा था, तब वह सह गई थी। जब पहली बार उसके हाथ जलाए गए थे, तब भी वह चुप रही थी। परंतु जब उसकी आत्मा को जलाने की तैयारी हुई, तब उसकी चीखें भी हार गईं। उसे केरोसिन डालकर आग लगा दी गई, और उसकी असहनीय पीड़ा सिर्फ दीवारों और छत ने सुनी।

रामसिंह को जब पुलिस स्टेशन बुलाया गया, तब उनकी आँखों में न आँसू थे, न आवाज़। उन्होंने अपनी मृत बेटी की तस्वीर को देखा और काँपते हुए कहा, "मैंने तो उसे सिखाया था कि सहनशीलता स्त्री का आभूषण होती है, परंतु यह नहीं सिखाया कि अत्याचार को भी सहते रहना चाहिए।" उनकी इस बात पर दरोगा ने कागज़ पर दस्तखत माँगे और कहा, "आप चाहे तो रिपोर्ट लिखवा सकते हैं, पर लड़ाई लंबी चलेगी।"

कमला ने अपने पति का हाथ थामा और दृढ़ता से कहा, "हम लड़ेंगे! हमारी सुगंधा ने सहा, पर अब हम नहीं सहेंगे!" और उसी दिन उन्होंने न्याय की लड़ाई का संकल्प लिया। गाँव वालों की बातें, समाज के ताने, रिश्तेदारों की ठंडी साँसें—सब सहकर वे अदालत पहुँचे।

सालों बाद जब न्याय हुआ, तब तक सुगंधा की चीखें हवा में घुल चुकी थीं। परंतु उसकी माँ के आँसू अब भी नहीं रुके थे। उन्होंने बेटी

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

की तस्वीर के आगे दीप जलाया और कहा, "बेटी, हम हार नहीं मानेंगे। अब कोई और सुगंधा नहीं जलेगी।" और उस रात, पूरे गाँव ने महसूस किया कि बाबुल का आँगन फिर से सूना हो गया, पर उसकी बेटी की चीखें हमेशा गूँजती रहेंगी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

19. पिता का टूटा हुआ सपना

सूरज ढलने को था। आकाश की लालिमा धीरे-धीरे अंधकार में समाने लगी थी। गाँव के एक कोने में एक कच्चे घर के बाहर बूढ़ा रामलाल चारपाई पर बैठा, थकी हुई आँखों से सड़क की ओर निहार रहा था। उसकी आँखों में इंतज़ार था, ऐसा इंतज़ार जिसे शब्दों में पिरोना मुश्किल था। हर शाम की तरह आज भी वह अपने बेटे मोहन के लौटने की राह देख रहा था। मोहन शहर में पढ़ाई करने गया था, पिता का सपना था कि बेटा बड़ा आदमी बने, नाम कमाए, और गाँव का मान बढ़ाए। मगर जिस सपने को संजोने में उसने अपनी पूरी जिंदगी खपा दी, वही सपना धीरे-धीरे उसकी आँखों के सामने चकनाचूर हो रहा था।

रामलाल को याद आया जब मोहन के स्कूल जाने की उम्र हुई थी, तब उसने दिन-रात मेहनत कर खेतों में काम किया था। धूप में जलते हुए, हाथों में पड़े छालों की परवाह किए बिना उसने अपने बेटे की किताबों का खर्च उठाया था। उसकी माँ अक्सर कहती, "इतनी मेहनत क्यों करते हो? इस गाँव में रहकर भी गुज़ारा हो सकता है।" लेकिन रामलाल का जवाब हमेशा एक ही होता, "मेरा मोहन गाँव में नहीं, शहर में पढ़ेगा, बड़े अफसर बनेगा।" सपनों की एक पूरी दुनिया उसने अपने मन में बसा ली थी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

समय बीता, मोहन शहर चला गया। शुरुआत में वह चिट्ठियाँ लिखता था, पिता के हाल पूछता था, लेकिन धीरे-धीरे चिट्ठियाँ कम होने लगीं, और फिर एक दिन पूरी तरह बंद हो गईं। पिता का मन घबराने लगा। क्या उसका मोहन उसे भूल गया? क्या वह शहर की चकाचौंध में इतना खो गया कि अपने संघर्षशील पिता की तपस्या को ही भुला बैठा? मगर रामलाल ने खुद को समझाया, "नहीं, मेरा मोहन ऐसा नहीं कर सकता। वह ज़रूर किसी बड़ी परेशानी में होगा।"

फिर एक दिन खबर आई कि मोहन ने शहर में नौकरी कर ली है। पूरे गाँव में खुशी की लहर दौड़ गई। लोगों ने रामलाल को बधाइयाँ दीं। मगर यह खुशी तब दर्द में बदल गई जब मोहन ने गाँव लौटने से मना कर दिया। उसने कहा, "गाँव में कोई सुविधा नहीं है, यहाँ मेरे लिए कुछ भी नहीं बचा। अब मैं शहर में ही रहूंगा।" यह सुनते ही रामलाल को लगा कि किसी ने उसके सीने में छुरा घोंप दिया हो। उसका सपना तो यही था कि मोहन पढ़-लिखकर गाँव लौटे, यहाँ के हालात सुधारे, मगर मोहन ने तो गाँव से ही नाता तोड़ लिया था।

एक दिन, वर्षों बाद, मोहन को अपने पिता की बीमारी की खबर मिली। मजबूरी में उसे गाँव आना पड़ा। जब वह पहुँचा तो घर का हाल देखकर सन्न रह गया। टूटी हुई चारपाई पर पड़ा उसका बूढ़ा पिता, सूखे चेहरे और बुझी आँखों के साथ लेटा था। उसे देखकर भी उसके चेहरे पर कोई खुशी नहीं थी। मोहन ने पास जाकर कहा, "बाबूजी, मैं आ गया।" रामलाल ने अपनी थकी आँखों से उसकी ओर देखा और धीमे स्वर में कहा, "कौन हो बेटा? मैं किसी मोहन को नहीं जानता। मेरा मोहन तो गाँव का सपना देखता था, शहर का नहीं।" यह कहते ही उसकी आँखें बंद हो

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

गईं, और उसके शरीर ने एक गहरी सांस लेकर संसार को अलविदा कह दिया।

मोहन फफककर रो पड़ा। उसे महसूस हुआ कि उसने अपने सपनों के पीछे दौड़ते-दौड़ते अपने पिता का सपना तोड़ दिया। जिस पिता ने अपनी पूरी जिंदगी उसे बड़ा आदमी बनाने में लगा दी, उसी का अंतिम समय उसने अकेलेपन और दर्द में बीतने दिया। उसका मन ग्लानि से भर गया, मगर अब पछताने के लिए कुछ नहीं बचा था।

अंततः, गाँव में रामलाल की चिता जली, और साथ ही जल गए वे सपने जो उसने अपने बेटे के लिए देखे थे। मोहन को अब एहसास हो गया था कि असली सफलता केवल बड़ी नौकरी या धन-संपत्ति नहीं, बल्कि अपनों के साथ रहने और उनके सपनों को पूरा करने में है। मगर यह एहसास बहुत देर से हुआ था।

गाँव की हवा में अब भी रामलाल के अधूरे सपनों की गूँज थी, जो आने वाली पीढ़ियों को यह सिखाने के लिए काफी थी कि सपने देखने से ज्यादा जरूरी है उन्हें अपने अपनों के साथ पूरा करना।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

20. खिलौनों सी ज़िंदगी

बचपन में जब भी गुड्डे-गुड़ियों से खेलते थे, तब यह नहीं पता था कि एक दिन हमारी अपनी ज़िंदगी भी इन्हीं खिलौनों की तरह हो जाएगी। आज जब सुमित्रा अपने बेटे रोहन को गोद में लिए बैठी थी, तब उसकी आँखों से आँसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। छह महीने का मासूम बच्चा उसकी गोद में निढाल पड़ा था, भूख से तड़प रहा था, और उसकी आँखों में एक असहाय माँ की बेबसी झलक रही थी। पति की मौत के बाद यह दुनिया उसके लिए किसी कठोर बाज़ार से कम नहीं थी, जहाँ हर कोई अपने स्वार्थ के लिए दूसरे को परखता है।

वह अपने बेटे को लेकर गलियों में घूमती, लोगों से मदद की भीख माँगती, लेकिन किसी को भी उसके दर्द की परवाह नहीं थी। उसे याद आया कि किस तरह उसकी शादी रामशरण से हुई थी, एक साधारण मज़दूर जिसने उससे बड़े-बड़े वादे किए थे। मगर किस्मत ने उसकी खुशियों को रेत की तरह उड़ा दिया। रामशरण एक दिन काम पर गया और फिर लौटा ही नहीं। एक निर्माणाधीन इमारत गिर गई थी, और उसके मलबे में दबकर वह सदा के लिए सो गया। ठेकेदार ने चंद सिक्के पकड़ा दिए, मानो ज़िंदगी की कीमत बस इतनी ही हो।

उस दिन से सुमित्रा का संघर्ष शुरू हो गया था। वह कभी कपड़े धोती, कभी बर्तन माँजती, लेकिन लोगों के ताने और गंदी निगाहें उसका जीना दूभर कर देतीं। उसे समझ में नहीं आता कि विधवा होना इतना बड़ा अपराध क्यों है? जब भी वह किसी से मदद माँगती, तो या तो उसे उपेक्षा

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

मिलती या फिर अनैतिक प्रस्ताव। वह रातों को अपने बच्चे को सीने से लगाकर रोती, सोचती कि क्या यह दुनिया सिर्फ़ पैसेवालों के लिए बनी है? क्या ग़रीब की कोई इज़्ज़त नहीं होती?

एक दिन भूख से तड़पते रोहन को गोद में उठाए हुए वह एक मंदिर के सामने बैठी थी। भक्तगण बड़े चाव से भगवान को दूध, मिठाइयाँ चढ़ा रहे थे, लेकिन किसी ने उस भूखे बच्चे की ओर नहीं देखा। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। तभी एक बूढ़ा साधु उसके पास आया और बोला, "बेटी, तेरा दुख देख रहा हूँ। पर दुनिया से उम्मीद मत रख, अपने पैरों पर खड़ी हो। यह समाज सिर्फ़ उन्हीं की इज़्ज़त करता है जो अपने लिए लड़ना जानते हैं।"

सुमित्रा को उसकी बातों में सच्चाई नज़र आई। उसने उसी दिन फैसला कर लिया कि अब वह किसी के आगे हाथ नहीं फैलाएगी। उसने पास की एक दुकान पर काम माँगा, मालिक ने पहले उसे दुत्कारा, फिर आधे वेतन पर काम देने को तैयार हुआ। पेट की आग ने उसे किसी भी शर्त पर काम करने के लिए मजबूर कर दिया। दिनभर वह झाड़ू-पोंछा करती, रात को रोहन को गोद में लेकर अपनी टूटी झोंपड़ी में सो जाती।

धीरे-धीरे उसकी मेहनत रंग लाई। उसने थोड़ा-थोड़ा पैसा जोड़कर अपनी छोटी-सी दुकान खोली। अब वह खिलौने बनाती और उन्हें बेचती थी। वही खिलौने, जिनसे बच्चे खेलते, मगर उसे यह एहसास होता कि असली खिलौने तो वे लोग हैं जो समाज की कठपुतली बने रहते हैं। उसने अपने बेटे को पढ़ाने का संकल्प लिया। वह नहीं चाहती थी कि उसका रोहन भी उसकी तरह ज़िंदगी की कठोर सच्चाईयों का शिकार बने।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

वर्षों बाद जब रोहन एक सफल इंजीनियर बना और माँ के संघर्ष को दुनिया ने सराहा, तब जाकर लोगों को एहसास हुआ कि ज़िंदगी खिलौनों की तरह नहीं होनी चाहिए, जिसे जब चाहे कोई भी तोड़ दे। रोहन ने अपनी माँ की तपस्या को व्यर्थ नहीं जाने दिया। उसने समाज में बदलाव लाने का संकल्प लिया और गरीबों के हक के लिए लड़ने लगा।

आज जब सुमित्रा अपने पोते को गोद में लिए बैठी थी, तो उसकी आँखों में गर्व के आँसू थे। वह जानती थी कि उसकी ज़िंदगी एक संघर्ष भरी कहानी थी, लेकिन वह कहानी जिसे आज लोग सलाम कर रहे थे। और यही उसकी सबसे बड़ी जीत थी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

21. आखिरी मुलाकात अस्पताल में

शहर के सबसे बड़े अस्पताल के उस वार्ड में हर तरफ दर्द की कहानियाँ बिखरी पड़ी थीं। कोई अपने जीवन के अंतिम क्षण गिन रहा था, तो कोई बीमारी से जूझते हुए अपनों की बाट जोह रहा था। वहीं, एक बिस्तर पर पड़े वृद्ध रामशरण की आँखें दरवाजे की ओर टिकी थीं, जैसे किसी अपने की राह देख रही हों। उनके चेहरे पर झुर्रियाँ गहरी हो चली थीं, आँखों में धुंधलापन था, पर दिल की आस अब भी चमक रही थी। रामशरण का जीवन संघर्षों से भरा था। गाँव की मिट्टी में जन्मे इस आदमी ने अपने श्रम से चार बेटों को ऊँचे मुकाम तक पहुँचाया था। जब वे छोटे थे, तो उनकी हर छोटी ज़रूरत पूरी करने के लिए रामशरण ने खुद को दिन-रात खपा दिया था। लेकिन वक्त ने करवट बदली, बेटे बड़े हुए, शहरों में बस गए और धीरे-धीरे पिता की अहमियत उनकी जिंदगी से कम होती चली गई। रामशरण को छोड़कर वे अपनी दुनिया में इतने मसरूफ हो गए कि पिता का हाल-चाल पूछने की भी फुर्सत न मिली।

कुछ महीनों पहले रामशरण को तेज बुखार और कमजोरी हुई थी। पड़ोसियों की मदद से उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया। डॉक्टरों ने बताया कि उनकी बीमारी अब लाइलाज है। यह खबर पूरे शहर में रहने वाले उनके बेटों को दी गई, पर किसी ने आने की जहमत नहीं उठाई। हर बार कोई बहाना बनाकर टाल देते—कभी ऑफिस का दबाव, कभी बच्चों की परीक्षाएँ, तो कभी लंबा सफर।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

पर आज उनकी आस फिर से जागी थी। नर्स ने बताया था कि उनके बेटे आने वाले हैं। वह दिनभर बेचैनी से बिस्तर पर करवटें बदलते रहे। कभी हाथों से अपने मैले कंबल को ठीक करते, कभी आँखों पर हाथ फेरते, मानो आँखों की नमी को छुपाना चाहते हों। पूरे दिन उन्होंने ठीक से खाना भी नहीं खाया, बस दरवाजे की तरफ टकटकी लगाए रहे।

शाम ढलने को थी, तभी वार्ड के दरवाजे पर तीन साए उभरे। उनके बेटे थे! रामशरण की आँखों में एकाएक चमक आ गई, जैसे बुझते दीपक की लौ अचानक भड़क उठी हो। वे लड़खड़ाते हुए उठने की कोशिश करने लगे, पर कमजोरी ने साथ नहीं दिया। बेटे धीरे-धीरे आगे बढ़े, उनके चेहरे पर कोई खास भाव न थे, बस औपचारिकता निभाने की मजबूरी झलक रही थी।

"कैसे हो, बाबूजी?" बड़े बेटे ने पूछा, पर आवाज़ में अपनापन नहीं था।

रामशरण कुछ बोल न सके। उनकी आँखों से आँसू ढलने लगे। वे कोई शिकायत नहीं करना चाहते थे, कोई उलाहना नहीं देना चाहते थे। बस, उन्हें जी भरकर अपने बेटों को देख लेने की तड़प थी।

बेटे कुछ मिनट खड़े रहे, फिर छोटे बेटे ने कहा, "हमें जल्दी लौटना है, फ्लाइट मिस हो जाएगी। डॉक्टर से मिलकर दवा-इलाज की व्यवस्था कर देते हैं।"

रामशरण के चेहरे पर एक फीकी मुस्कान आ गई। वे समझ गए कि यह मुलाकात भी बस एक रस्म भर थी। आँखें धीरे-धीरे बंद हो गईं, शायद हमेशा के लिए।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

22. सांसों का सौदा

गाँव के एक कोने में, मिट्टी की दीवारों और फूस की छत वाला एक छोटा-सा घर था। घर क्या, बस झोंपड़ी ही थी। उसमें रहने वाला अकेला इंसान था - रामदीन। उसकी ज़िंदगी एक संघर्ष थी, और वह संघर्ष भी ऐसा जो हर सुबह नए दर्द के साथ शुरू होता और हर रात एक नए आँसू से खत्म होता। उसकी दुनिया का सबसे अनमोल खज़ाना थी उसकी बेटी - गीता। उसकी माँ गंगा, वर्षों पहले ही संसार छोड़ चुकी थी, जब गीता सिर्फ़ पाँच साल की थी। तब से रामदीन ही उसके लिए पिता भी था और माँ भी।

रामदीन गाँव के सेठ लक्ष्मीनारायण के खेतों में मज़दूरी करता था। सुबह से लेकर शाम तक कड़ी धूप में जलता, मिट्टी में सना रहता, तब जाकर शाम को चूल्हा जलाने भर को अनाज मिलता। गीता अब सत्रह की हो चली थी। उसकी उम्र की लड़कियाँ अपने हाथों में मेहंदी रचातीं, सुनहरे सपने बुनतीं, लेकिन गीता के हाथों में केवल घिसे हुए बर्तन और धूल भरी चूड़ियाँ थीं। पिता की आँखों में एक ही सपना था—किसी तरह बेटी का ब्याह कर दे, ताकि वह सुखी रह सके।

लेकिन ज़िंदगी इतनी आसान कहाँ थी! एक दिन अचानक गीता को तेज़ बुखार आ गया। गाँव के हकीम ने दवा दी, पर कोई फ़ायदा न हुआ। बुखार बढ़ता गया, साँसें भारी होने लगीं, और गीता धीरे-धीरे मरणासन्न स्थिति में पहुँच गई। शहर ले जाने का सुझाव मिला, लेकिन रामदीन के पास इतने पैसे कहाँ थे! उसके लिए तो दो वक़्त की रोटी जुटाना ही पहाड़ तोड़ने जैसा था। फिर भी, उसने हार नहीं मानी। सेठ लक्ष्मीनारायण

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

के पास गया, हाथ जोड़कर मदद की गुहार लगाई। परंतु सेठ ने उपेक्षा से हँसकर कहा, "ब्याज पर रुपये चाहिए तो गिरवी रखने के लिए कुछ दो!" रामदीन के पास देने को क्या था? एक टूटी-फूटी झोंपड़ी, कुछ बर्तन, और अपनी बेटी की ज़िंदगी! आँसू पीकर वह घर लौटा, गीता की मुरझाई हुई आँखों को देखा, और उसी पल एक निर्णय लिया। अगले दिन वह सेठ के पास फिर गया और काँपते स्वर में बोला, "सेठ जी, मेरी साँसें गिरवी रख लो! जब तक तुम्हारा कर्ज़ न चुकाऊँ, मैं तुम्हारे खेत में दिन-रात मज़दूरी करूँगा। बस मेरी बेटी को बचा लो।"

सेठ ने हँसकर कहा, "रामदीन, यह सौदा अजीब है। लेकिन ठीक है, तू जब तक मेरा कर्ज़ नहीं चुकाएगा, तेरी मज़दूरी की पूरी मज़दूरी मेरे पास गिरवी रहेगी।" कागज़ पर अंगूठा लगते ही गीता को शहर ले जाया गया। वहाँ इलाज हुआ, धीरे-धीरे वह ठीक होने लगी। पर रामदीन का संघर्ष और बढ़ गया। अब वह खेतों में और अधिक मेहनत करता, कमर तोड़ परिश्रम करता, लेकिन उसकी एक भी पाई उसे न मिलती।

समय बीतता गया, गीता अब स्वस्थ थी, पर रामदीन सूखती हुई डाल की तरह कमजोर होता गया। उसका शरीर जवाब देने लगा। एक दिन, खेत में काम करते-करते वह गिर पड़ा। उसकी साँसें तेज़ हो गईं, और कुछ ही पलों में वह चिर निद्रा में सो गया।

गाँव की तंग गलियों में कोलतार से पटी सड़कें और झोपड़ियों की लंबी कतारें इस बात की गवाही देती थीं कि यहाँ के लोग जीवन से जूझ रहे थे। गरीबी इस कदर हावी थी कि हर घर में भूख एक स्थायी मेहमान बन चुकी थी। इन्हीं झोपड़ियों में से एक में रहता था रामदीन, एक गरीब मज़दूर, जिसने जिंदगीभर ईमानदारी से मेहनत की, पर तक़दीर ने उसके हिस्से में सिर्फ अभाव ही लिखे थे।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

रामदीन की बेटी गीता उसकी आँखों का तारा थी। माँ के गुजर जाने के बाद, गीता ही उसकी जीने की वजह थी। वह चाहता था कि उसकी बेटी पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ी हो, लेकिन हालात उसके सपनों से ज्यादा कठोर थे। खेतों में दिनभर पसीना बहाने के बाद भी वह दो वक्त की रोटी मुश्किल से जुटा पाता था। ऊपर से साहूकार से लिया गया कर्ज़ उसके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप बन गया था।

रामदीन के सिर पर साहूकार से लिया गया पाँच हजार रुपये का कर्ज़ था, जो ब्याज सहित अब बीस हजार तक पहुँच चुका था। सेठ हर महीने पैसे वसूलने आता, और जब रामदीन पैसे देने में असमर्थ होता, तो गालियाँ और धमकियाँ देकर चला जाता। गीता ने कई बार पिता से कहा, "बाबा, हम किसी और जगह चलें, यहाँ से भाग चलें।" लेकिन रामदीन को अपनी मिट्टी से बेहद लगाव था।

एक दिन सेठ ने आखिरी चेतावनी दी, "या तो कर्ज़ चुका, या फिर अपनी बेटी को मेरे हवाले कर दे।" यह सुनते ही रामदीन का खून खौल उठा। वह सोच भी नहीं सकता था कि उसकी बेटी को किसी की हवस का शिकार बनने दे। लेकिन उसके पास कोई उपाय भी नहीं था।
उस रात वह छत पर लेटा हुआ टकटकी लगाए तारों को देख रहा था। गीता पास में सोई थी, लेकिन उसके भीतर बेचैनी थी। वह जानती थी कि उसके पिता के मन में कोई गहरी उथल-पुथल चल रही थी।

अगली सुबह, गाँव में कोहराम मच गया। रामदीन की लाश पीपल के पेड़ से लटक रही थी। उसकी आँखें खुली थीं, मानो दुनिया को आखिरी बार देख रही हों। पास में एक चिट्ठी पड़ी थी—"मेरे मरने के बाद गीता को मत छूना, यह मेरी आखिरी विनती है।" गाँव वालों ने जब यह खबर सुनी तो पूरे गाँव में मातम छा गया। लेकिन सेठ ने लाश को देखते ही ठंडी आवाज़ में कहा, "चलो, सौदा पूरा हुआ!"

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

गीता अपनी पिता की ठंडी पड़ चुकी देह को देखती रही। उसकी आँखों से आँसू बहते रहे, पर वह समझ नहीं पा रही थी कि दुनिया इतनी निर्दयी कैसे हो सकती है? क्या गरीबों की साँसें भी बिक सकती हैं? शायद हाँ! इस दुनिया में गरीबों की साँसें भी बिकती हैं!

रामदीन की मौत के बाद, गाँव में एक अजीब सन्नाटा पसर गया। मज़दूरों के चेहरों पर सिर्फ डर और असहायता थी। सेठ का आतंक बढ़ता ही जा रहा था, लेकिन गीता के दिल में एक आग जल चुकी थी। उसने ठान लिया कि वह अपने पिता की कुर्बानी को बेकार नहीं जाने देगी।

वह गाँव के लोगों को इकट्ठा करने लगी, उनके हकों के लिए आवाज़ उठाने लगी। धीरे-धीरे मज़दूर जागरूक होने लगे। वे अब सेठ के अन्याय के खिलाफ खड़े हो गए। गीता ने सरकारी अफसरों तक अपनी आवाज़ पहुँचाने की कोशिश की। लेकिन व्यवस्था भी तो उन्हीं सेठों के इशारों पर चलती थी!

एक दिन, गीता को गाँव के बाहर एक सामाजिक कार्यकर्ता मिला। उसने गीता को समझाया कि शिक्षा ही असली हथियार है। गीता ने ठान लिया कि वह पढ़ेगी और अपने पिता के सपने को पूरा करेगी। उसने मजदूरी की, गाँव की औरतों को इकट्ठा किया और सबको पढ़ाने लगी। धीरे-धीरे गाँव में बदलाव आने लगा।

समय बीतता गया, लेकिन गीता का संघर्ष जारी रहा। कई वर्षों बाद, जब गीता एक बड़ी सामाजिक कार्यकर्ता बन चुकी थी, तब उसने अपने गाँव में एक स्कूल की नींव रखी। उस स्कूल का नाम था—"रामदीन स्मृति विद्यालय।" यह स्कूल उन गरीब बच्चों के लिए था, जिनके सपने अक्सर गरीबी की धूल में दब जाते थे।

आज भी गाँव में जब कोई गरीब मज़दूर अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाता है, तो लोग रामदीन की कहानी याद करते हैं। उसकी पीड़ा

की गूँज गाँव के हर ग़रीब मज़दूर की ज़ुबान पर रहती है। गीता ने दिखा दिया कि गरीबों की साँसें बिकती नहीं, बल्कि वे क्रांति की आग में बदल सकती हैं।

👌👌👌

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

23. उसकी अधूरी डायरी

गाँव की गलियों में अब भी उसकी परछाई घूमती थी। चबूतरे पर बैठे बुज़ुर्ग उसकी बातों को याद कर आहें भरते, तो औरतें अब भी उसके नाम पर दुआएं माँगतीं। वह थी ही ऐसी। सरल, कोमल, मगर अपने हिस्से का दुःख अकेले ही झेलने वाली। नाम था—सावित्री। एक नाम नहीं, गाँव के हर दुःखी चेहरे की पहचान।

सावित्री का जन्म एक साधारण किसान परिवार में हुआ था। उसके पिता, रामखेलावन, गाँव के सबसे ईमानदार आदमी थे, मगर ईमानदारी पेट नहीं भरती। माँ, जानकी, दिन-रात घर की जरूरतों के बीच खुद को झोंक देती। बचपन से ही सावित्री ने सीखा था कि औरतों की दुनिया केवल समझौतों से बनी होती है। वह होशियार थी, पढ़ने में अव्वल, मगर लड़कियों की पढ़ाई उस समय विलासिता मानी जाती थी। पिता ने जैसे-तैसे पाँचवीं तक पढ़ाया, फिर हाथ जोड़ दिए—"बिटिया, हमारे बस का नहीं।"

सावित्री ने विरोध नहीं किया। माँ की मदद करने लगी, खेतों में पिता के साथ काम करने लगी, मगर उसके भीतर एक सपना था—एक दिन इस दुनिया से अलग कुछ करेगी। उसकी डायरी में दर्ज हर शब्द उसके अधूरे सपनों की चीख थी। वह हर रात अपने सपनों को कागज पर उकेर देती, जिससे उन्हें जीने का अहसास हो सके।

उम्र बढ़ी, तो रिश्तों की बातें होने लगीं। सावित्री सुंदर थी, गुणवान थी, मगर गरीब थी। पैसेवालों को ऐसी बहू नहीं चाहिए थी, और गरीब के घर बहू लाने का मतलब था एक और पेट पालने की जिम्मेदारी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

अंततः रामखेलावन ने उसकी शादी अपने ही गाँव के एक मजदूर लड़के, मोहन, से कर दी।

मोहन अच्छा आदमी था, मगर मजबूरियों से घिरा हुआ। दिनभर ईंट-गारा ढोता, रात को टूटी खाट पर थककर गिर जाता। सावित्री उसकी पीड़ा समझती थी। वह जानती थी कि यह विवाह उसके सपनों का अंत था, मगर उसने मन मार लिया। अब उसकी डायरी में केवल घरेलू जद्दोजहद और गरीबी के आँसू बचे थे।

समय बीतता गया। सावित्री ने दो बेटों को जन्म दिया। घर की तंगी, बच्चों की भूख और पति की टूटी उम्मीदों ने उसे भीतर से घेर लिया। मगर उसने हार नहीं मानी। गाँव में एक स्कूल खुला था, जहाँ उसने शिक्षिका की नौकरी पकड़ ली। महीने के सौ रुपये ही मिलते, मगर उससे घर की दशा कुछ सुधरने लगी।

मगर गाँव की सोच इतनी सरल नहीं थी। "औरत नौकरी करेगी?" लोग फुसफुसाते, ताने मारते, मगर सावित्री डटी रही। वह जानती थी कि यदि उसने हिम्मत छोड़ी, तो उसके बच्चों का भविष्य भी उसी दलदल में धँस जाएगा, जहाँ से वह खुद निकलना चाहती थी। उसकी डायरी अब फिर सपनों से भरने लगी थी।

मगर किस्मत को उसका हौसला रास नहीं आया। एक दिन मोहन के सिर पर ईंट गिर गई। अस्पताल तक पहुँचने से पहले ही वह दुनिया छोड़ गया। सावित्री के पैरों तले जमीन खिसक गई। गाँववालों ने सहानुभूति जताई, मगर वह सहानुभूति भीख जैसी लगती थी। कुछ महीनों बाद लोग कहने लगे—"अकेली औरत कितने दिन टिकेगी?"

अब तक सावित्री सिर्फ़ हालातों से लड़ी थी, अब उसे समाज से भी लड़ना था। रिश्तेदारों ने कहा—"बच्चों के लिए दूसरा विवाह कर ले।" मगर उसने इंकार कर दिया। उसने ठान लिया कि वह अकेले ही अपने

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

बच्चों को पालकर दिखाएगी। उसकी डायरी अब एक योद्धा की लड़ाई की कहानी बन गई थी।

गाँव की औरतों के लिए वह मिसाल बन गई। लोग कहते—"अगर सावित्री कर सकती है, तो हम क्यों नहीं?" मगर समाज के ठेकेदार उसे ये इज़्ज़त देने को तैयार नहीं थे। रास्ते में चलते हुए फब्तियाँ कसी जातीं, उसके चरित्र पर उंगलियाँ उठाई जातीं, मगर उसने हर अपमान को चुपचाप पी लिया।

साल बीतते गए। उसके बेटे बड़े होने लगे। बड़े बेटे ने जब पहली बार स्कूल की परीक्षा में प्रथम स्थान पाया, तो उसकी आँखों में गर्व और आँसू एक साथ थे। उसने डायरी में लिखा—"मेरी मेहनत सफल हो रही है।" मगर शायद किस्मत ने अभी और इम्तिहान लेने थे।

गाँव के ही एक दबंग को उसकी हिम्मत बर्दाश्त नहीं हुई। उसने उसे अपमानित करने के लिए स्कूल से हटवाने की साजिश रची। गाँव के पंचों ने बैठक बुलाई। "औरत घर की शोभा होती है, नौकरी करके बदनामी मत फैला।"

सावित्री ने पहली बार खुलेआम विरोध किया। उसने कहा—"अगर स्कूल में पढ़ाना बदनामी है, तो गाँव की हर औरत को बदनाम होना चाहिए।" मगर उसकी आवाज़ नक्कारखाने में तूती की तरह दब गई। अगले ही दिन उसे नौकरी से निकाल दिया गया।

सावित्री टूटी नहीं। उसने अपने घर में ही बच्चों को पढ़ाने का काम शुरू किया। धीरे-धीरे औरतें अपनी बेटियों को उसके पास भेजने लगीं। उसने ज़िद ठान ली थी कि चाहे कुछ भी हो जाए, वह गाँव की लड़कियों को उस अंधेरे से बाहर निकालेगी, जिसमें उसने खुद अपनी जिंदगी काट दी थी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

मगर संघर्ष की यह कहानी अधूरी रह गई। एक दिन अचानक सावित्री की तबीयत बिगड़ी। गाँव में इलाज की सुविधा नहीं थी। लोग उसे शहर ले जाने का इंतज़ाम करते, इससे पहले ही उसने अंतिम साँस ले ली।

गाँव में पहली बार सच्ची शोकसभा हुई। औरतें बिलख पड़ीं, बुज़ुर्गों की आँखें नम थीं। उसकी चिता जल रही थी, और उसकी छोटी-सी झोपड़ी में उसकी अधूरी डायरी पड़ी थी—उसकी हिम्मत, उसके सपने, उसके लड़ाई की गवाह।

आज वह नहीं थी, मगर उसकी लिखी पंक्तियाँ गाँव की हर लड़की के होंठों पर थीं—"हिम्मत औरत की सबसे बड़ी ताकत है। जब तक यह ज़िंदा है, कोई उसे हरा नहीं सकता।"

👌👌👌

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

24. सपनों की अर्थी

राजू का जन्म गाँव के सबसे गरीब परिवार में हुआ था। उसकी झोपड़ी टूटी-फूटी थी, जिसके छप्पर से बारिश टपकती थी। लेकिन उसकी आँखों में सपने उतने ही बड़े और चमकदार थे। वह चाहता था कि उसके माता-पिता सम्मानजनक जीवन जी सकें, एक पक्का मकान हो, और गरीबी का साया उसके परिवार से दूर हो जाए। हर रात सोने से पहले वह अपने सपनों की कल्पना करता और सुबह एक नई ऊर्जा के साथ जागता।

गाँव के लोग उसकी मेहनत को देखकर कहते, "यह लड़का बहुत बड़ा आदमी बनेगा।" लेकिन राजू की माँ जानती थी कि गरीबी के हाथ बहुत लंबे होते हैं, जो सपनों को जकड़कर उन्हें दम तोड़ने पर मजबूर कर देते हैं।

राजू पढ़ने में तेज था, लेकिन उसके पास किताबें खरीदने के पैसे नहीं थे। वह दूसरों की पुरानी किताबों के पन्ने समेटकर पढ़ता, टूटी हुई पेंसिल से लिखता, और कई बार खाली पेट स्कूल जाता। उसे एहसास था कि ज्ञान ही उसका सबसे बड़ा हथियार है। इसलिए वह दिन-रात मेहनत करता रहा।

जब उसने किसी तरह इंटर पास कर लिया, तो उसके सामने एक नया सवाल खड़ा था - अब आगे की पढ़ाई के लिए पैसे कहाँ से आएँगे? उसके पिता मजदूर थे और माँ घर के छोटे-मोटे काम करके किसी तरह दो वक्त की रोटी का इंतजाम कर पाती थी। माँ ने अपने गहने बेच दिए, लेकिन वे भी नाकाफी थे। आखिरकार, राजू ने खुद मजदूरी करने का फैसला लिया।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

राजू बड़े सपनों के साथ शहर पहुँचा, जहाँ उसे उम्मीद थी कि मेहनत की कद्र होगी। लेकिन जल्द ही उसे समझ आ गया कि शहर की चकाचौंध में गरीबों के लिए कोई जगह नहीं थी। ऊँची डिग्रियों वाले लोग भी नौकरी के लिए धक्के खा रहे थे। उसने सोचा कि कोई छोटी-मोटी नौकरी करके खुद का खर्चा निकालेगा, लेकिन उसे कोई मौका नहीं मिला।

एक दिन जब वह थका-हारा शहर की सड़कों पर भटक रहा था, तो उसने कुछ लोगों को कूड़ा बीनते देखा। उसके मन में विचार आया - "क्या मेरी मेहनत का यही अंजाम होगा?" लेकिन उसने हार नहीं मानी और अखबार बेचने का काम शुरू किया। उसने अपनी पढ़ाई के लिए हर संभव कोशिश की, भूखे रहकर भी पढ़ाई जारी रखी।

फिर वह दिन आया जब उसने सरकारी नौकरी की परीक्षा दी। पूरे गाँव को यकीन था कि वह पास हो जाएगा। माँ ने मंदिर में मन्नत माँगी, पिता ने पहली बार गर्व से सिर ऊँचा किया। लेकिन जब परिणाम आया, तो उसका नाम सूची में नहीं था।

राजू के सपनों की अर्थी उठ चुकी थी। उसने देखा कि उसकी जगह वह व्यक्ति पास हुआ था, जिसने रिश्वत दी थी। यह अन्याय देखकर उसका हौसला टूट गया।

राजू घर लौटा तो उसकी आँखों में अब कोई उम्मीद नहीं थी। उसने अपनी किताबें उठा कर फेंक दीं और चुपचाप मजदूरी करने लगा। उसके सपने इतिहास बन चुके थे। गाँव के लोग आज भी कहते हैं, "राजू बहुत मेहनती था, पर गरीबी ने उसे निगल लिया।" उसकी मुस्कान अब हमेशा के लिए दफन हो चुकी थी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

25. एक माँ की बद्दुआ

गाँव के उस छोर पर, जहाँ पीपल का घना पेड़ हवा में झूमता था, वहीं एक छोटी-सी झोपड़ी में रोशनी की किरणें भी संकोच से प्रवेश करती थीं। उस झोपड़ी में रहती थी गोमती—एक बूढ़ी माँ, जिसका इकलौता बेटा, शंकर, उसे छोड़कर शहर चला गया था। उसकी आँखों में अब भी बेटे की यादें तैरती रहतीं, पर आँखों से गिरते आँसू किसी पुराने गीत की तरह गूंजते रहते थे।

शंकर जब छोटा था, तो गोमती ने उसे बड़ी मुश्किलों से पाला था। पति का साया तो शादी के कुछ वर्षों बाद ही उठ गया था, तब से उसने अपने बेटे को ही अपनी दुनिया बना लिया था। खेतों में मजदूरी करती, दूसरों के घरों में झाड़ू-पोंछा लगाती, पर अपने लाल को कभी किसी चीज़ की कमी न होने देती। वह उसे पढ़ा-लिखाकर बड़ा आदमी बनाना चाहती थी। शंकर ने माँ की मेहनत को देखा और कसमें खाईं कि एक दिन वह इस गरीबी से बाहर निकलेगा।

समय बीतता गया। शंकर पढ़ाई में होशियार था। उसकी मेहनत रंग लाई और एक दिन उसे शहर में एक बड़ी नौकरी मिल गई। यह सुनकर गोमती फूली न समाई। उसे लगा कि उसके त्याग का फल मिल गया। गाँव में सबने उसकी प्रशंसा की और कहा, "अब तेरा बेटा तुझे रानी बनाकर रखेगा।" माँ भी यही सपना देखने लगी।

पर शंकर को शहर की चमक-दमक भा गई। वह धीरे-धीरे गाँव और अपनी माँ से दूर होता गया। जब पहली बार माँ के लिए पैसे भेजने की बारी आई, तो उसने सोचा, "माँ को इतने पैसों की क्या ज़रूरत? गाँव

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

में तो सौ रुपए में भी महीना कट जाता होगा।" उसने बस नाम मात्र के पैसे भेजे और खुद शहर में आराम से रहने लगा।

महीने गुज़रते गए, फिर साल बीत गए, लेकिन शंकर कभी माँ से मिलने न आया। उसकी शादी भी शहर में ही हो गई, और धीरे-धीरे माँ की यादें धुंधली होने लगीं। उधर, गोमती बेटे की राह तकते-तकते बूढ़ी हो गई। गाँववालों ने उसे ताने देने शुरू कर दिए—"जिस बेटे को पालने में तूने अपनी जवानी खपा दी, वही तुझे भूल गया?" यह शब्द उसकी आत्मा को छलनी कर देते।

फिर एक दिन, माँ बीमार पड़ गई। उसने गाँव में किसी से कहलवाकर बेटे को संदेश भिजवाया, "बेटा, मैं बहुत बीमार हूँ। एक बार आ जा, तेरी सूरत देख लूँ।" लेकिन शंकर ने अपनी पत्नी से कहा, "गाँव जाकर क्या होगा? वहाँ गंदगी, गरीबी और बीमारियाँ हैं। माँ तो यूँ ही भावुक हो रही होगी।" उसने आने का वादा किया, पर वह वादा कभी पूरा न हुआ। गोमती की हालत बिगड़ती गई। एक रात, उसने कांपते हाथों से आसमान की ओर देखा और कहा, "हे भगवान, जिसे मैंने अपने खून-पसीने से पाला, जो मेरी दुनिया था, उसने आज मुझे इस हाल में छोड़ दिया! मैं उसे अपने जीते-जी आशीर्वाद नहीं दे सकती, पर मेरी बद्दुआ उसके साथ रहेगी।" अगले ही दिन, गोमती ने अपने प्राण त्याग दिए।

शंकर कई वर्षों बाद अपने गाँव लौटा। जब वह गाँव की मिट्टी पर उतरा, तो हवा में एक अजीब-सी नमी और उदासी घुली हुई थी। पेड़ों की फुसफुसाहट, पक्षियों की मंद स्वर में चीखें, और गाँव की गलियों में पसरा सन्नाटा—सब कुछ उसे कुछ अनहोनी का संकेत दे रहे थे। उसकी आँखों में अपने बचपन की यादें तैर गईं। वही गाँव, जहाँ उसने नंगे पाँव दौड़ते हुए अपना बचपन बिताया था, वही गलियाँ, जहाँ उसकी हँसी गूँजा

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

करती थी, वही चौपाल, जहाँ उसकी माँ बैठकर गाँव की औरतों से बातें किया करती थी। लेकिन आज सब कुछ बदला-बदला लग रहा था।

जब वह अपने घर पहुँचा, तो उसकी आँखें माँ को खोजने लगीं। उसे उम्मीद थी कि जैसे ही वह घर में कदम रखेगा, उसकी माँ खुशी से उसे गले लगा लेगी, आँखों से आँसू छलक पड़ेंगे, और वह अपने कंधे पर सिर रखकर रो पड़ेगी। लेकिन जब उसने दरवाजे पर कदम रखा, तो देखा कि आँगन में कुछ औरतें सिर झुकाए बैठी थीं। माहौल में अजीब-सी शांति थी।

शंकर का दिल ज़ोर से धड़कने लगा। वह दौड़ता हुआ अंदर पहुँचा और जो देखा, उसने उसकी रूह को झकझोर कर रख दिया। उसकी माँ निर्जीव पड़ी थी, उनकी आँखें बंद थीं, चेहरे पर पीड़ा की लकीरें स्पष्ट थीं। उसकी दुनिया जैसे थम गई। उसके पैरों तले ज़मीन खिसक गई। वह माँ के पास घुटनों के बल बैठ गया और उनकी ठंडी देह को पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगा।

"माँ! मैं आ गया माँ! देखो, तुम तो कहती थीं कि मैं जहाँ भी रहूँ, तुम्हारे बिना नहीं रह सकता! फिर मुझे अकेला क्यों छोड़ दिया? माँ, एक बार आँखें खोलो! एक बार मेरे सिर पर हाथ फेर दो! माँ!"

लेकिन उसकी चीखें उस माँ तक नहीं पहुँच सकती थीं, जिसने उसे जन्म दिया था। उसके आँसुओं से माँ की चुप्पी नहीं टूटी, उसका विलाप बेअसर था। गाँववालों ने सिर झुका लिया। कोई उसकी तरफ नहीं देख रहा था। कुछ देर तक वह माँ के पास बैठा रहा, जैसे समय वहीं रुक गया हो। उसकी आँखों के आगे अतीत की सारी घटनाएँ तैरने लगीं।

शंकर कभी बहुत लाड़ला हुआ करता था। उसके माता-पिता उसे जान से भी ज्यादा प्यार करते थे, लेकिन युवा होते ही उसमें बदलाव आने लगे थे। वह पढ़ाई के लिए शहर गया और वहाँ की चकाचौंध में ऐसा

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

खो गया कि गाँव और माँ की सुध ही भूल गया। माँ कई बार चिट्ठियाँ भेजती, कई बार फोन करतीं, लेकिन वह अक्सर कह देता, "माँ, अभी बहुत काम है। बाद में बात करता हूँ।"

कई बार माँ ने उससे गाँव लौटने को कहा। उन्होंने अपनी बढ़ती उम्र, अकेलापन, और कमजोर होते शरीर की बात बताई, लेकिन शंकर हर बार किसी न किसी बहाने से टालता गया। उसे लगता था कि माँ हमेशा रहेंगी, वह कभी इतनी जल्दी उसे छोड़कर नहीं जा सकतीं। वह यह समझ ही नहीं पाया कि माँ का अकेलापन उनके लिए किसी धीमे ज़हर से कम नहीं था।

फिर एक दिन गाँव से संदेश आया—"तेरी माँ बहुत बीमार है, जल्दी आ जा।" लेकिन शंकर तब भी अपने कामों में उलझा रहा। उसे लगा कि माँ हमेशा की तरह ठीक हो जाएँगी। लेकिन इस बार वह गलत था। जब तक वह गाँव पहुँचा, तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

गाँववालों ने उसे घेर लिया। किसी ने कुछ नहीं कहा, बस एक बुज़ुर्ग ने गहरी साँस लेकर कहा, "बेटा, माँ का श्राप लगे बिना भी तेरा जीवन अब चैन से नहीं कटेगा। यह बोझ तुझे हमेशा ढोना पड़ेगा।"

शंकर की आँखों में पश्चाताप के आँसू थे। उसे एहसास हो रहा था कि उसने अपनी माँ की अनदेखी करके क्या खो दिया था। उसके अंदर एक खालीपन भर गया, जो कभी नहीं भर सकता था। उसने माँ की चिता को मुखाग्नि दी, लेकिन उसकी आत्मा में एक ज्वाला सुलग रही थी, जो कभी नहीं बुझ सकती थी। वह सोच रहा था कि अगर वह कुछ दिन पहले आ जाता, तो शायद उसकी माँ उसे आखिरी बार देख पातीं, उससे बात कर पातीं, उसे आशीर्वाद दे पातीं।

अब वह पछतावे की आग में जलने के लिए अकेला रह गया था। माँ के बिना यह घर सूना हो गया था, और उसका जीवन भी। वह

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

चाहकर भी उस बोझ को नहीं उतार सकता था, जो उसकी आत्मा पर हमेशा के लिए चिपक गया था।

उसने मन ही मन ठान लिया कि अब वह अपनी बाकी जिंदगी किसी और की उपेक्षा नहीं करेगा। वह हर उस व्यक्ति की मदद करेगा, जो अपने माता-पिता से दूर हो गया है, ताकि कोई और शंकर उसकी तरह इस अंधेरे में न डूबे। लेकिन माँ के लिए अब कुछ भी नहीं किया जा सकता था। अब वह केवल यादों में ही रह गई थीं, और उन यादों के साथ शंकर को अपनी पूरी जिंदगी बितानी थी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

26. मोहब्बत का मरा हुआ जिस्म

गाँव के बाहर पीपल के उस पुराने पेड़ के नीचे, जहाँ मिट्टी की सौंधी खुशबू और पत्तों की सरसराहट एक उदास संगीत छेड़ती थी, वहीं बैठा था रामलाल। उसका चेहरा बुझा हुआ था, आँखों में एक सूखा सागर था और होंठों पर एक खामोश शिकायत। यह वही जगह थी जहाँ कभी सावित्री उसके लिए बेसब्र होकर इंतजार किया करती थी। बचपन से लेकर जवानी तक, वे दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे थे। पर आज, समय और समाज की दीवारें उनके बीच ऐसी खड़ी हुईं कि सब कुछ बदल गया।

रामलाल किसी गरीब किसान का बेटा था, जिसके लिए दिन-रात खेतों में पसीना बहाना ही जीवन था। दूसरी ओर, सावित्री जमींदार की बेटी थी, जिसके घर की हवेलियाँ और ऊँची दीवारें उसके सपनों के बीच आकर खड़ी हो जाती थीं। पर प्रेम में कोई भेद नहीं होता। सावित्री के लिए रामलाल ही उसकी दुनिया था, और रामलाल के लिए सावित्री का एक हँसता चेहरा ही उसकी पूरी कायनात थी। दोनों का प्रेम किसी गहरे दरिया की तरह था, जिसमें डूबने का भय नहीं था, बस बह जाने की चाह थी। पर यह चाहत जितनी गहरी थी, उतनी ही दुर्लभ भी।

एक दिन सावित्री की शादी का समाचार पूरे गाँव में आग की तरह फैल गया। रामलाल की माँ ने जब सुना तो घबराकर बोली, "बेटा, तू इन बड़े लोगों के चक्कर में मत पड़, अपनी औकात मत भूल। उनके लिए हम जैसे लोग कीड़े-मकोड़े से ज्यादा कुछ नहीं।" पर प्रेम औकात नहीं देखता, वह तो बस बह जाता है, बिना किनारे की परवाह किए। रामलाल बौखलाकर हवेली की ओर भागा, पर दरवाजे पर ही रोक दिया गया।

उसकी आँखों में जो प्यार था, वही अब आँसुओं में बदल गया था। सावित्री भी कमरे में बंद कर दी गई थी, जहाँ वह चाहकर भी रामलाल के पास नहीं जा सकती थी।

शादी की रात सावित्री ने हाथ जोड़कर अपने पिता से कहा, "बाबूजी, मुझे सोने में जड़ा हुआ यह पिंजरा नहीं चाहिए, मुझे तो बस अपना रामलाल चाहिए।" पर पिता की आँखों में समाज का भय था, इज्जत का पर्दा था। "बेटी, यह प्यार-व्यार निचली जाति वालों के साथ करने के लिए नहीं होता, यह सब हमारी शान के खिलाफ है।" सावित्री चुप हो गई, पर भीतर एक तूफान उठ चुका था। उसी रात वह अपने कमरे से भाग निकली और उसी पीपल के पेड़ के नीचे आ गई, जहाँ कभी उसने रामलाल को अपना माना था। लेकिन यह क्या? रामलाल का निर्जीव शरीर वहीं पड़ा था, उसके हाथ में एक पुरानी चिट्ठी थी, जिसमें लिखा था—"तू मेरी नहीं हो सकती तो यह जीवन भी मेरा नहीं हो सकता।"

सावित्री का कलेजा फट गया। उसने रामलाल के शव को बाँहों में भर लिया और फूट-फूटकर रोने लगी। उसके आँसुओं में पछतावा था, दर्द था और एक ऐसी चीख थी, जिसे सुनने वाला कोई न था। समाज ने एक और प्रेम की हत्या कर दी थी। हवेली के भीतर पिता अपनी इज्जत बचाने में सफल हो गए थे, पर सावित्री की आत्मा मर चुकी थी। उसी रात, उसने अपने आँचल को गले में डाल लिया और रामलाल के पास ही झूल गई। अगली सुबह गाँववालों ने देखा कि पीपल के नीचे दो प्रेमी सो रहे थे—एक-दूसरे की बाँहों में। पर यह नींद अनंत थी, जहाँ कोई जात-पात की दीवार नहीं थी, जहाँ कोई समाज नहीं था।

गाँव में यह खबर आग की तरह फैल गई। कुछ लोग अफसोस जताने आए, कुछ ने इसे पागलपन कहा, और कुछ ने बस एक तमाशे की तरह देखा। पर पीपल के नीचे पड़े दो निर्जीव जिस्मों के चेहरे पर एक सुकून

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

था, मानो वे कह रहे हों—"अब हमें कोई जुदा नहीं कर सकता।" हवेली में पिता का सिर झुका हुआ था, और माँ की आँखों से आँसू थमने का नाम नहीं ले रहे थे। पर अब पछताने का कोई अर्थ नहीं था। मोहब्बत का मरा हुआ जिस्म दुनिया के सामने पड़ा था, और समाज उसकी बेहरहमी पर खामोश खड़ा था।

पीपल का वह पुराना पेड़, गाँव के बीचों-बीच, इतिहास की एक जिंदा किताब की तरह खड़ा था। उसकी घनी शाखाओं के नीचे बैठे बुज़ुर्ग अक्सर अतीत की कहानियाँ सुनाते थे, लेकिन उनमें से एक कहानी सबसे ज्यादा सुनी और महसूस की जाती थी—सावित्री और रामलाल की अधूरी प्रेम कहानी। दशकों पहले की यह दास्तान आज भी हवा में घुली हुई थी। पीपल की पत्तियाँ जब तेज हवा में सरसरातीं, तो ऐसा लगता मानो कोई सिसकियाँ भर रहा हो, कोई खामोश चीखें आसमान की ओर उठ रही हों। गाँव के लोग मानते थे कि जब भी कोई प्रेमी जोड़ा इस पेड़ के नीचे आता, तो उसकी पत्तियाँ उन्हें सावधान कर देतीं—"प्रेम करना, पर समाज की बेड़ियों को मत भूलना।" यही वह स्थान था, जहाँ सावित्री और रामलाल ने अपने जीवन के सबसे खूबसूरत पल बिताए थे और यही वह स्थान था, जहाँ उनकी प्रेम कहानी को समाज ने निर्ममता से कुचल दिया था।

सावित्री गाँव के प्रतिष्ठित जमींदार की बेटी थी, जबकि रामलाल एक साधारण किसान परिवार से था। दोनों का प्रेम बचपन में शुरू हुआ था, जब वे साथ खेला करते थे, नदी किनारे घंटों बतियाते थे, और कभी-कभी पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर भविष्य के सपने बुनते थे। सावित्री की हँसी रामलाल के कानों में मिश्री की तरह घुल जाती थी, और रामलाल की आँखों में सावित्री को दुनिया का सबसे सुरक्षित आशियाना नजर आता था। लेकिन यह समाज उन दोनों के प्रेम को सहजता से स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। जैसे-जैसे वे बड़े हुए, उनके प्रेम की गहराई बढ़ती गई,

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

लेकिन उनके घरवालों की सख्ती भी बढ़ गई। सावित्री के पिता ने उसे समझाने की कोशिश की कि उनकी दुनिया अलग है, कि समाज ऐसे प्रेम को स्वीकार नहीं करता, लेकिन सावित्री के मन में प्रेम की लौ बुझने को तैयार नहीं थी।

एक दिन, जब उनके प्रेम का राज खुल गया, तो गाँव में हलचल मच गई। जमींदार का क्रोध आसमान को छूने लगा, और रामलाल के माता-पिता डर से सिमट गए। पंचायत बुलाई गई, और वहाँ प्रेम को अपराध घोषित कर दिया गया। सावित्री को घर में कैद कर दिया गया, और रामलाल को गाँव छोड़ने का आदेश दिया गया। लेकिन प्रेम कहाँ बेड़ियों में बंधता है? सावित्री ने अपनी दुनिया से विद्रोह करने की ठानी और आधी रात को चुपके से पीपल के पेड़ के नीचे पहुँची, जहाँ रामलाल पहले से ही उसका इंतजार कर रहा था। उनके पास कोई रास्ता नहीं था—या तो वे भाग सकते थे या फिर इस समाज की निर्ममता का शिकार बन सकते थे। उन्होंने भागने का निर्णय लिया, लेकिन नियति को शायद कुछ और ही मंजूर था। गाँववालों को भनक लग गई, और उन्हें पकड़ लिया गया। सावित्री को वापस घर ले जाया गया, और रामलाल को ऐसी यातनाएँ दी गईं कि उसके प्रेम की चमक हमेशा के लिए धुंधली हो गई।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद, सावित्री की शादी जबरन कर दी गई, लेकिन वह रामलाल को भूल नहीं पाई। उसकी आँखों में हमेशा एक अधूरे सपने की कसक झलकती थी। कहते हैं, उसने अपने पति का घर तो बसा लिया, लेकिन उसकी आत्मा हमेशा उसी पीपल के पेड़ के नीचे भटकती रही। दूसरी ओर, रामलाल उस गाँव को छोड़कर चला गया, लेकिन उसका हृदय वहीं छूट गया था। कुछ वर्षों बाद जब वह वापस आया, तो वही पीपल का पेड़ उसका गवाह बना, जब उसने उसी की शाखा से लटककर अपने जीवन का अंत कर लिया। गाँववालों का कहना था कि

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

उस रात पीपल की पत्तियाँ असामान्य रूप से सरसराई थीं, मानो सावित्री की सिसकियों और रामलाल की खामोश चीखों का संगम हो रहा हो। वह प्रेम, जो समाज की जंजीरों में जकड़ा था, आज़ादी की तलाश में आत्मा बनकर वहीं भटक रहा था।

समय बीतता गया, लेकिन पीपल के उस पेड़ की छाँव में आज भी लोग आते हैं। कोई वहाँ बैठकर घंटों सोचता है, तो कोई अपने प्रेम को उस अधूरी प्रेम कहानी से जोड़ने की कोशिश करता है। गाँव के बुजुर्ग अब भी नवयुवकों को उस कहानी के जरिए सिखाते हैं कि प्रेम सिर्फ दिलों का मेल नहीं, बल्कि समाज की बेड़ियों से संघर्ष करने का नाम भी है। कोई कहता है कि उस पेड़ की पत्तियाँ आज भी प्रेमियों को चेतावनी देती हैं— "प्रेम करना, पर समाज की बेड़ियों को मत भूलना।" सावित्री और रामलाल की कहानी आज भी हवाओं में गूँजती है, उनकी सिसकियाँ आज भी पीपल की जड़ों में दबी हैं, और उनकी खामोश चीखें आज भी उन प्रेमियों को सतर्क करती हैं, जो इस समाज के सामने अपने प्रेम की परीक्षा देने की हिम्मत जुटाते हैं।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

27. तलाश उस बचपन की

धूप की तपिश से झुलसती दोपहर थी। बाज़ार की भीड़ अपने-अपने गंतव्यों की ओर भाग रही थी, लेकिन चौक के कोने पर, मिट्टी से सने फटे कपड़ों में लिपटा एक छोटा सा लड़का, श्यामू, आँखों में उदासी का समंदर लिए खड़ा था। उसकी आँखें किसी को तलाश रही थीं, कोई अपना, कोई जो उसे प्यार से पुकारे, कोई जो उसके अस्तित्व को स्वीकार करे। पर वहाँ सब अजनबी थे—तेज़ कदमों से चलते हुए, अपनी दुनिया में मस्त।

श्यामू का मन किसी पुराने धागे की तरह उलझा हुआ था। उसे याद था, किसी समय उसके पास भी एक माँ थी, जो उसे गोदी में लेकर लोरी सुनाती थी। एक पिता था, जो शाम को उसकी जेब में मिठाई के टुकड़े डाल दिया करता था। लेकिन वह बीता कल था, जो अब किसी धुंधली तस्वीर की तरह उसकी आँखों के सामने तैरता था।

उस दिन की बात थी जब उसके पिता मजदूरी करने गए थे और लौटकर नहीं आए। माँ ने दिन-रात रो-रोकर अपने आँसू सुखा दिए, लेकिन पेट की भूख आँसूओं से नहीं बुझी। धीरे-धीरे, माँ की हालत बिगड़ती गई और एक दिन वह भी दुनिया से विदा हो गई। श्यामू अकेला रह गया। पड़ोस के लोग कुछ दिन तक उसे रोटी देते रहे, फिर अपने-अपने कामों में व्यस्त हो गए। भूख ने उसे सड़क पर ला दिया।

अब वह उसी भीड़ में शामिल हो चुका था, जिसमें न जाने कितने बच्चे थे—कोई फूल बेच रहा था, कोई जूते पॉलिश कर रहा था, कोई भीख माँग रहा था। लेकिन श्यामू के लिए यह सब आसान नहीं था। उसका

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

मन अब भी माँ की गोद तलाशता था, पिता की मजबूत बाहों की गर्मी ढूँढता था।

श्यामू की रातें अक्सर सड़क किनारे बीतती थीं। कई बार वह मंदिर की सीढ़ियों पर सो जाता, कई बार किसी दुकान के बाहर पड़ी बोरियों पर। जब पुलिसवालों की लाठियाँ उसे वहाँ से भगातीं, तो वह किसी और गली की शरण लेता। उसके छोटे-छोटे पैर हर जगह भटक चुके थे, लेकिन मन अभी भी भटका ही था।

एक दिन, जब वह भूख से बेहाल होकर सड़क किनारे बैठा था, तब एक सेठ ने उसे देखा। सेठ की आँखों में करुणा थी। उन्होंने उसे अपने साथ चलने को कहा, खाना खिलाया और अपने गोदाम में काम पर रख लिया। श्यामू को लगा कि शायद उसकी तकदीर बदल रही है। लेकिन नियति इतनी सरल नहीं थी।

सेठ का गोदाम असल में एक बंदीगृह से कम नहीं था। वहाँ छोटे-छोटे बच्चों से दिन-रात काम करवाया जाता, बिना किसी दया के। श्यामू भी अब उन बच्चों की तरह हो गया था, जिनके हाथों में किताबों की जगह बोरे थे, जिनके पैरों में जूते नहीं थे, सिर्फ़ छाले थे। मालिक की डाँट और मार उसकी रोज़मर्रा की ज़िंदगी बन गई थी।

कई बार उसके मन में आता कि भाग जाए, लेकिन भागकर जाता कहाँ? कौन उसे अपनाता? इस शहर में हर कोई अपने स्वार्थ में लिप्त था, किसी के पास एक अकेले, बेसहारा बच्चे के लिए समय नहीं था।

फिर एक रात, जब श्यामू कोठरी में पड़ा अपने बचपन को याद कर रहा था, तब एक और लड़का, गुड्डू, जो कुछ सालों से वहाँ था, उसके पास आया। उसने धीरे से कहा, "हमेशा यहाँ नहीं रह सकते। भागना होगा।"

श्यामू ने आँखें बड़ी कीं, लेकिन हिम्मत नहीं जुटा पाया। "अगर पकड़े गए तो?"

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

गुड्डू मुस्कराया, "तो मार खाएँगे, पर ज़िंदा तो रहेंगे। यहाँ रहने से अच्छा है बाहर की दुनिया देखना।"

अगली रात, जब सब सो रहे थे, दोनों ने धीरे से गोदाम की टूटी खिड़की से बाहर निकलने की कोशिश की। धड़कनें तेज़ थीं, हाथ-पैर काँप रहे थे, लेकिन आजादी की चाहत हावी थी। जैसे ही वे बाहर निकले, किसी ने आवाज़ लगाई—"रुको!"

दोनों के कदम थम गए। मालिक का आदमी था, जिसने भागने की कोशिश देख ली थी। वे दौड़ पड़े। चारों ओर अंधेरा था, पर दिल में उम्मीद की एक हल्की लौ जल रही थी।

भागते-भागते वे रेलवे स्टेशन पहुँच गए। भूखे, थके, डरे हुए, लेकिन आज़ाद। श्यामू ने पहली बार आसमान को देखा, जैसे वह उसे अपने सीने में समाने के लिए तैयार था। गुड्डू ने कहा, "अब हमें खुद के लिए कुछ करना होगा।"

वहाँ से उनकी नई यात्रा शुरू हुई। वे कभी फूल बेचते, कभी पानी की बोतलें उठाते, कभी अखबार बाँटते। धीरे-धीरे, जिंदगी एक दिशा लेने लगी।

समय बीतता गया। एक दिन, जब श्यामू स्टेशन पर अखबार बेच रहा था, तब एक सज्जन व्यक्ति ने उससे पूछा, "बेटा, पढ़ाई क्यों नहीं करते?"

श्यामू मुस्कराया। उसकी आँखों में अब भी बचपन की तलाश थी, लेकिन अब वह मासूमियत के साथ समझदारी भी लिए थी। उसने जवाब दिया, "अब मैं सिर्फ़ अपना बचपन नहीं, अपनी पूरी ज़िंदगी तलाश रहा हूँ।"

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

उस सज्जन व्यक्ति ने उसे गोद लिया, स्कूल में भर्ती करवाया। पहली बार, श्यामू ने किताबों को हाथ लगाया, कक्षा में बैठा, अध्यापक की बातें सुनीं। उसे लगा, जैसे उसने खोया हुआ बचपन फिर पा लिया हो।

लेकिन क्या सच में?

क्योंकि कुछ जख्म ऐसे होते हैं, जो कभी नहीं भरते। वे बस दिखना बंद हो जाते हैं।

श्यामू की आँखों में एक अजीब सा खालीपन था। वह केवल दस साल का था, लेकिन उसके चेहरे की झुर्रियाँ और बुझी हुई आँखें उसकी उम्र से कहीं अधिक का दर्द बयाँ करती थीं। सड़क के किनारे भीख माँगते हुए, कभी-कभी ढाबे पर जूठे बर्तन साफ करते हुए, वह दुनिया को देखता और सोचता कि क्या उसके जीवन का यही हश्र होना था? वह बचपन जिसे खुले आसमान के नीचे खिलखिलाने का हक था, वह बचपन जो माँ की गोद में लोरी सुनते हुए सपने देखता, वह बचपन जो पिता के कंधों पर बैठकर आसमान को छूने की कल्पना करता—श्यामू का वह बचपन कहीं खो गया था।

एक दिन, जब वह सड़क किनारे बैठा था, तो एक सज्जन व्यक्ति की नज़र उस पर पड़ी। उनका नाम रमेश बाबू था। उन्होंने देखा कि यह बच्चा बाकी भिखारियों से अलग था। उसकी आँखों में सवाल थे, जोख़िम था, और सबसे बढ़कर, उसमें सीखने की जिज्ञासा थी। उन्होंने बिना किसी देर किए उसे अपने साथ ले जाने का निश्चय किया। पहले तो श्यामू घबराया, क्योंकि वह लोगों के इरादों को लेकर हमेशा संदेह में रहता था। लेकिन जब रमेश बाबू ने उसे खाना खिलाया, नए कपड़े दिए और प्यार से उसका माथा सहलाया, तो उसे पहली बार किसी अजनबी में अपनापन महसूस हुआ।

पहली बार किताबों का स्पर्श

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

श्यामू के लिए यह सब नया था। अगले दिन, रमेश बाबू उसे स्कूल ले गए। यह एक सरकारी स्कूल था, जहाँ गरीब और बेसहारा बच्चों को मुफ्त शिक्षा दी जाती थी। जब पहली बार श्यामू ने किताबों को हाथ लगाया, तो उसे अजीब सा अहसास हुआ। उसके लिए यह केवल कुछ पन्नों का बंडल नहीं था, बल्कि एक नया संसार था। वह कक्षा में बैठा, अध्यापक की बातें सुनीं, और उसे ऐसा लगा मानो उसने अपना खोया हुआ बचपन फिर पा लिया हो।

लेकिन क्या सच में?

कक्षा में बच्चे हँसते, खेलते, कहानियाँ सुनते और नए दोस्त बनाते थे। लेकिन श्यामू के मन में एक अजीब सी खलिश थी। जब अध्यापक ने पूछा, 'बच्चों, तुम्हारा सबसे पसंदीदा खेल कौन सा है?' तो बाकी बच्चे चिल्ला-चिल्लाकर जवाब देने लगे—क्रिकेट, कबड्डी, लुका-छिपी! लेकिन श्यामू चुप रहा। उसे याद आया कि उसका कोई पसंदीदा खेल नहीं था। उसके बचपन में खेलों की जगह भूख ने ले ली थी, हँसी की जगह आँसुओं ने, और दोस्तों की जगह अनजान राहगीरों की बेपरवाह नज़रें थीं।

रमेश बाबू ने उसे प्यार और देखभाल दी, स्कूल में दाखिला करवाया, लेकिन क्या यह काफी था? क्योंकि कुछ जख्म ऐसे होते हैं, जो कभी नहीं भरते। वे बस दिखना बंद हो जाते हैं।

हर रात जब श्यामू सोने जाता, तो उसे अपने माता-पिता की धुंधली यादें सताने लगतीं। उसने कभी उन्हें अच्छे से जाना भी नहीं था। उसे बस इतना पता था कि एक दिन किसी ने उसे एक मंदिर के पास छोड़ दिया था और फिर वह कभी लौटकर नहीं आए। कभी-कभी वह सोचता कि क्या वह प्यार के लायक नहीं था? क्या माता-पिता उसे इस दुनिया में अकेला छोड़कर चले गए?

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

नए जीवन में रमने की कोशिश के बावजूद, जब भी वह किसी को 'माँ' या 'पापा' कहता सुनता, उसका दिल छलनी हो जाता। स्कूल में जब भी माता-पिता की बैठक होती, तो वह एक कोने में बैठकर देखता कि कैसे अन्य बच्चों के माता-पिता उनसे बातें करते, उन्हें गले लगाते। यह देखकर उसकी आँखें नम हो जातीं।

समय बीतने लगा। श्यामू धीरे-धीरे पढ़ाई में अच्छा करने लगा। उसके शिक्षक भी उसकी मेहनत देखकर उसे सराहने लगे। लेकिन उसका असली संघर्ष किताबों से नहीं, बल्कि अपने भीतर के अतीत से था।

रमेश बाबू ने जब यह देखा कि श्यामू के भीतर कुछ टूट चुका है, तो उन्होंने उससे धीरे-धीरे बात करनी शुरू की। उन्होंने समझाया कि जीवन केवल बीते हुए कल पर रोने के लिए नहीं है, बल्कि आने वाले कल को बेहतर बनाने के लिए है। उन्होंने उसे जीवन के महत्व के बारे में बताया और यह समझाया कि दर्द को स्वीकार करना और आगे बढ़ना ही सच्ची जीत होती है।

श्यामू ने इस बात को धीरे-धीरे समझना शुरू किया। वह जानता था कि उसके जख्म कभी पूरी तरह नहीं भरेंगे, लेकिन वह उन्हें अपनी कमजोरी नहीं बनने देगा। उसने ठान लिया कि वह पढ़-लिखकर अपने जैसे अनाथ बच्चों के लिए कुछ करेगा। उसने तय किया कि वह उन बच्चों की मदद करेगा, जो आज भी फुटपाथ पर सोते हैं, भूख से बिलखते हैं, और जिनका बचपन सड़क की धूल में खो गया है।

आज, दस साल बाद, श्यामू खुद एक शिक्षक बन चुका है। वह उन्हीं बच्चों को पढ़ाता है, जो कभी उसकी तरह बेसहारा थे। उसने अपने अतीत को अपनी ताकत बना लिया। अब जब कोई बच्चा उससे पूछता है, 'सर, क्या हम अपने सपनों को पूरा कर सकते हैं?' तो वह मुस्कुराकर कहता है, 'अगर मैंने कर दिखाया, तो तुम भी कर सकते हो।'

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

श्यामू के जीवन की यह कहानी हमें सिखाती है कि कुछ जख्म कभी नहीं भरते, लेकिन हम उनसे आगे बढ़ सकते हैं। हम अपने दर्द को अपनी ताकत बना सकते हैं और दूसरों के जीवन में रोशनी ला सकते हैं। क्योंकि अंत में, हमारा अतीत हमें परिभाषित नहीं करता—हमारी इच्छाशक्ति और संघर्ष हमें परिभाषित करते हैं।

28. अंतिम पत्र... माँ के नाम

बचपन में जब भी गिरता, माँ की गोद में सिर रखकर रोता था। उनकी उंगलियों का स्पर्श जैसे सारे दर्द हर लेता। माँ मेरी दुनिया थी, मेरी हर खुशी, मेरा हर ग़म उनके आंचल में सिमट जाता। पर आज, जब इस अंधेरे कमरे में अंतिम बार कागज पर कलम चला रहा हूँ, माँ मुझसे कोसों दूर है। यह पत्र न केवल मेरा अंतिम शब्द है, बल्कि मेरा अंतिम सांस भी।

माँ, तुमने हमेशा मुझे समझाया कि दुनिया में सच्चाई और मेहनत से बड़ा कोई धर्म नहीं। तुम कहती थी, "ईमानदारी की राह मुश्किल होती है बेटा, लेकिन यही तुझे एक अच्छा इंसान बनाएगी।" मैंने तुम्हारी हर सीख को पूजा की तरह अपनाया, लेकिन इस दुनिया ने मेरी मासूमियत को कुचल दिया। भ्रष्टाचार के इस दलदल में मैं कितना भी संभलने की कोशिश करता, हर तरफ मुझे धकेला गया। मैं लड़ा, बार-बार गिरा, फिर खड़ा हुआ। लेकिन जब अपने ही मुझे तोड़ने लगे, तब मैंने हार मान ली।

याद है माँ, जब मैंने पहली बार स्कूल की किताब खोली थी, तो तुमने कैसे मेरे माथे को चूमकर कहा था, "तू एक दिन बहुत बड़ा आदमी बनेगा!" लेकिन माँ, बड़ा आदमी बनने के लिए यहाँ ईमानदारी नहीं, बेईमानी चाहिए। मैंने कोशिश की थी कि तुम्हारे सपनों को पूरा कर सकूँ, लेकिन इस समाज ने मेरे आत्म-सम्मान को छीन लिया। मैं रोज़ सोचता था कि तुम्हारे पास लौट जाऊँ, लेकिन तुम्हारी आँखों में शर्म और दुःख देख पाने की हिम्मत नहीं जुटा सका।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

माँ, इस समाज में इज्ज़तदार कहलाने के लिए नीयत नहीं, पैसा चाहिए। यहाँ सच बोलने वाले को बेवकूफ और झूठे को चतुर समझा जाता है। मैंने सोचा था कि मेहनत करूंगा, अपनी पहचान बनाऊंगा, लेकिन माँ, जब हर तरफ सिर्फ धोखा ही मिला, तो मैं थक गया। मेरे अपने ही लोग मेरे खिलाफ हो गए, दोस्त दुश्मन बन गए। जब पहली बार रिश्वत ठुकराई, तो लोगों ने मुझे बेवकूफ समझा, दूसरी बार विरोध किया, तो मुझे बर्बाद कर दिया।

आज जब मैं इस अंधेरी कोठरी में अकेला बैठा हूँ, तो मुझे समझ आ रहा है कि जीवन की दौड़ में ईमानदार होना सबसे बड़ा अपराध है। माँ, तुमने मुझे हमेशा सिखाया कि खुद्दारी सबसे बड़ी दौलत होती है, लेकिन इस दुनिया ने यह दौलत भी मुझसे छीन ली। जब अपनों ने ही पीठ में छुरा घोंप दिया, तब मैं किससे शिकायत करता? हर तरफ अंधेरा था, हर इंसान केवल अपना स्वार्थ देख रहा था।

माँ, मुझे माफ कर देना। मैं तुम्हारा वो बेटा नहीं बन सका, जिस पर तुम गर्व कर सको। मैं तुम्हारे सपनों को पूरा नहीं कर सका। मैं जिंदगी की इस लड़ाई में हार गया। पर अब और नहीं लड़ सकता। अब मैं बहुत थक चुका हूँ, माँ। मुझे तुम्हारी गोद में सिर रखकर रोने का मन कर रहा है, लेकिन यह दुनिया इतनी निर्मम हो चुकी है कि यहाँ आँसुओं की भी कोई कीमत नहीं।

जब तुम यह पत्र पढ़ोगी, तब शायद मैं इस दुनिया में नहीं रहूँगा। पर मैं जानता हूँ, मेरी आत्मा हमेशा तुम्हारे साथ रहेगी। तुम मेरी आत्मा को अपने आंचल में महसूस करोगी, मेरे हर आँसू को अपनी आँखों में देखोगी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

माँ, अगर अगले जन्म में फिर से मौका मिले, तो मैं सिर्फ तुम्हारा बेटा बनना चाहूँगा, पर इस निर्दयी दुनिया में नहीं।

माँ,

जब मैंने यह पत्र लिखना शुरू किया, तो मेरे हाथ काँप रहे थे। मेरा मन असंख्य भावनाओं से भरा हुआ था—दर्द, पश्चाताप, और एक अदृश्य पीड़ा। मैं नहीं जानता कि जब तुम इसे पढ़ोगी, तब तुम्हारे मन में क्या गुज़रेगा, पर इतना जरूर जानता हूँ कि तुम्हारी आँखें नम हो जाएँगी। तुम इस पत्र को पढ़ते हुए मुझे अपने पास महसूस करोगी, मेरी आवाज़ तुम्हारे कानों में गूँज उठेगी।

माँ, जब से मैंने इस दुनिया में कदम रखा, तब से लेकर आज तक तुमने मुझे अपने आँचल में छुपाकर रखा। मुझे गिरने नहीं दिया, कभी दुखों की परछाईं भी मुझ पर नहीं पड़ने दी। लेकिन माँ, इस दुनिया ने मुझे कई बार गिराया, तोड़ा, रौंदा, और आखिरकार मैं हार गया। इस दुनिया की बेरहमी ने मुझे अंदर से इतना कमजोर कर दिया कि अब मुझमें लड़ने की ताकत नहीं बची। मैं थक चुका हूँ, माँ।

मुझे याद है, जब मैं छोटा था और स्कूल में दोस्त मुझे चिढ़ाते थे, तो मैं घर आकर रोता था। तुम मेरे आँसू पोंछतीं और कहतीं, "बेटा, ये दुनिया कठोर है, लेकिन तुम्हें मजबूत बनना होगा। तुम्हें अपने हौसले से इसे जीतना होगा।" माँ, मैंने कोशिश की, मैंने बहुत कोशिश की, पर मैं हार गया। इस दुनिया की कठोरता ने मेरी आत्मा को झकझोर कर रख दिया।

जब भी मैं तुम्हारे हाथ का बना खाना खाता था, तो उसमें तुम्हारा प्यार महसूस करता था। अब सोचता हूँ कि मैं फिर कभी तुम्हारे हाथ का

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

बनाया खाना नहीं खा पाऊँगा। तुम्हारे वो गर्म हाथ, जो मेरे सिर पर फिरते थे, अब मुझे कभी महसूस नहीं होंगे। माँ, अगर अगले जन्म में फिर मौका मिले, तो मैं फिर से तुम्हारा बेटा बनना चाहूँगा, लेकिन इस निर्दयी दुनिया में नहीं। ऐसी दुनिया में जहाँ इंसानियत हो, जहाँ दिलों में प्यार हो, जहाँ एक बेटा अपनी माँ को छोड़कर जाने के लिए मजबूर न हो।

मुझे पता है, जब तुम इस पत्र को पढ़ोगी, तो तुम्हारा दिल टूट जाएगा। लेकिन माँ, मुझे माफ कर देना। मैं तुम्हारी गोद में रोना चाहता था, तुम्हारे कंधे पर सिर रखकर अपने दुख कह देना चाहता था, लेकिन मैं कमज़ोर पड़ गया। मैं तुम्हें दुखी नहीं देख सकता, इसलिए यह पत्र लिख रहा हूँ। शायद यह मेरा आखिरी संदेश होगा।

तुम्हें याद है, माँ, जब मैं छोटा था और रात में डरकर जाग जाता था, तो तुम मुझे अपनी गोद में लेकर थपकी देती थीं। तुम्हारी गोद दुनिया की सबसे सुरक्षित जगह थी। आज मैं बहुत डरा हुआ हूँ, पर अब कोई थपकी देने वाला नहीं है। इस दुनिया ने मुझे इतना तोड़ दिया कि अब मैं संभल नहीं सकता।

माँ, मुझे बस इतना कहना है कि अगर कभी मुझे अगला जन्म मिले, तो मैं फिर से तुम्हारा बेटा बनूँगा, लेकिन किसी ऐसी दुनिया में, जहाँ कोई दर्द न हो, कोई तकलीफ न हो। मैं बस तुम्हारे आँचल की छाँव में रहना चाहता हूँ, हमेशा।

अलविदा माँ, तुम्हारा बेटा...

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

29. पतझड़ में खिला फूल

गाँव के एक कोने में, पीपल के घने छाँव तले, एक टूटी-फूटी झोपड़ी थी। छप्पर से झाँकते सूखे पत्ते, दीवारों पर उभर आई दरारें और आँगन में बिखरी उपेक्षा की धूल इस झोपड़ी की दशा बयाँ कर रही थी। इसी झोपड़ी में रहती थी पचास बरस की विधवा भगवती, जो अपनी छह साल की पोती फूलवा के साथ जीवन के संघर्ष में दिन-रात जूझ रही थी। भगवती का बेटा हरिदास पाँच साल पहले शहर की चकाचौंध में रोटी कमाने गया था, पर अब तक उसकी कोई खबर नहीं थी। बहू इंतज़ार करते-करते चल बसी, और फूलवा, जो जन्म के समय ही माँ की गोद से बिछुड़ गई थी, अपनी दादी के आँचल में स्नेह खोज रही थी।

गाँव वालों के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। भूख, गरीबी, और अपनों से ठगे जाने की कहानियाँ यहाँ हर चौपाल पर सुनी जा सकती थीं। भगवती दिन में दूसरों के घरों में काम करती, तो रात में आँगन में बैठी, फूलवा को कहानियाँ सुनाती। लेकिन इन कहानियों में राजकुमार अब नहीं होते थे, न ही कोई जादुई परी। अब ये कहानियाँ थी मेहनत करने वालों की, पेट काटकर बच्चों को पढ़ाने वालों की, और हर हाल में जीने वालों की।

फूलवा उम्र में भले ही छोटी थी, पर समझदारी में बड़ी थी। उसे अपनी दादी की थकान दिखती थी, उनकी आँखों में छिपी पीड़ा समझ आती थी। वह जब भी खेलती, दादी के आँचल को पकड़कर ही खेलती, मानो डर हो कि अगर छोड़ दिया, तो दादी भी उसे छोड़ जाएँगी। भगवती

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

के लिए फूलवा केवल पोती नहीं, जीने का एकमात्र सहारा थी। लेकिन इस सहारे को भी समय की आँधियाँ धीरे-धीरे कमजोर कर रही थीं।

एक दिन भगवती गाँव के साहूकार से कर्ज़ लेने गई। आटा खत्म हो चुका था, और फूलवा पिछले दो दिन से केवल पानी और गुड़ से पेट भर रही थी। साहूकार ने पहले उसे ऊपर से नीचे तक देखा, फिर हँसी उड़ाते हुए कहा—"भगवती, अब तेरा कौन है इस दुनिया में? तेरी झोपड़ी गिरने को तैयार है, शरीर ढल चुका है, और इस छोटी बच्ची का पेट कब तक भर पाएगी? अच्छा होगा, इसे किसी बड़े घराने में नौकरानी बना दे। तेरे लिए भी थोड़ा अनाज आ जाएगा और बच्ची के दिन भी कट जाएँगे।"

यह सुनकर भगवती के तन-बदन में आग लग गई। उसकी बूढ़ी आँखों में गर्व और क्रोध की ज्वाला जल उठी। उसने काँपते हाथों से अपनी धोती ठीक की और दृढ़ स्वर में कहा, "साहूकार, मेरी पोती मेरी अमानत है। उसे नौकरानी बनाकर मैं जिंदा नहीं रह सकती।" और यह कहकर वह खाली हाथ लौट आई।

संध्या का समय था। आकाश धीरे-धीरे काले बादलों से घिरने लगा था, और ठंडी हवा झोपड़ी के कोनों में सिहरन पैदा कर रही थी। भगवती अपनी छोटी-सी झोपड़ी के दरवाजे पर बैठी थी, और उसकी पोती फूलवा उसकी गोद में आराम से लेटी थी। भगवती के झुर्रियों भरे हाथ फूलवा के रूखे बालों को सहला रहे थे, लेकिन उसका मन किसी गहरी चिंता में डूबा हुआ था। उसकी बूढ़ी आँखें उदास थीं, और होंठ धीरे-धीरे काँप रहे थे।

आज पूरा दिन उसने अपने भीतर की पीड़ा को दबाए रखा था। लेकिन जब फूलवा ने मासूमियत से उसके चेहरे की ओर देखा और प्यार से उसकी उँगलियाँ पकड़ लीं, तो उसकी आँखों से आँसू छलक पड़े।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

फूलवा ने तुरंत अपने नन्हे हाथों से उसकी गालों को छूते हुए पूछा, "दादी, तुम रो रही हो?"

भगवती को लगा जैसे किसी ने उसके दिल के अंदर उठते तूफान को महसूस कर लिया हो। गरीबी की आग में झुलसते-झुलसते वह इतनी कठोर हो चुकी थी कि अपने दुखों को किसी के सामने प्रकट नहीं करती थी, लेकिन यह छोटी-सी बच्ची, जिसकी उम्र महज पाँच-छह साल थी, उसकी पीड़ा को पहचान गई थी।

गरीबी कितनी निर्दयी होती है, यह भगवती से बेहतर कौन जान सकता था? जब से उसके बेटे का निधन हुआ था, तब से वह अकेले ही फूलवा का पालन-पोषण कर रही थी। उसका बेटा रामलाल, जो कभी मेहनत-मजदूरी करके घर चलाता था, एक दिन किसी दुर्घटना का शिकार हो गया था और इस दुनिया को अलविदा कह गया था। उसके जाने के बाद फूलवा की माँ भी सदमे में रहने लगी और एक दिन घर छोड़कर चली गई। तब से यह छोटी-सी जान बस अपनी दादी की गोद में ही सुकून पाती थी।

लेकिन क्या सच में भगवती फूलवा को ठीक से पाल पा रही थी? वह खुद से यह सवाल हर रोज पूछती थी। सुबह से लेकर रात तक काम करके भी वह दो वक्त की रोटी नहीं जुटा पाती थी। कभी-कभी उसे अपने पड़ोसियों से उधार लेना पड़ता था, और कभी-कभी खाली पेट सो जाना पड़ता था।

आज भी दिनभर उसने मेहनत की थी, लेकिन मजदूरी के पैसे बहुत कम मिले। वह बाजार गई थी ताकि कुछ आटा, दाल और सब्जी खरीद सके, लेकिन जब उसने अपनी जेब टटोली तो पैसे इतने कम थे कि सिर्फ आधा किलो आटा ही खरीद पाई। दाल और सब्जी खरीदने की उसकी हिम्मत ही नहीं हुई।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

फूलवा अभी बहुत छोटी थी, उसे इस बेरहम दुनिया के नियमों का ज्ञान नहीं था। उसे नहीं पता था कि गरीबी क्या होती है, भूख क्या होती है। उसे तो बस इतना पता था कि उसकी दादी उसके लिए बहुत मेहनत करती हैं और उससे बहुत प्यार करती हैं।

जब भगवती की आँखों में आँसू छलक आए, तो फूलवा ने धीरे-से उसके चेहरे को छुआ और कहा, "दादी, तुम रो रही हो? मैं तुम्हारे लिए भगवान से प्रार्थना करूँगी।"

भगवती का हृदय भर आया। एक पाँच साल की बच्ची, जो खुद भी भूखी थी, उसकी चिंता कर रही थी! यह कैसी विडंबना थी? उसने फूलवा को कसकर गले से लगा लिया और उसके सिर को चूमते हुए बोली, "नहीं रे, मैं नहीं रो रही। बस कुछ धुआँ आँखों में चला गया है।"

फूलवा मासूमियत से मुस्कुराई, "दादी, क्या भगवान हमारी मदद करेंगे?"

भगवती ने धीरे-से कहा, "हाँ बेटा, भगवान सबकी सुनते हैं।" लेकिन यह कहते हुए उसे अपने ही शब्दों पर विश्वास नहीं हुआ। अगर भगवान सुनते तो क्या वह और फूलवा इस हाल में होते?

लेकिन फूलवा को पूरा यकीन था कि भगवान उसकी सुनेंगे। उसने दोनों हाथ जोड़कर अपनी नन्ही आवाज़ में प्रार्थना की, "भगवान, मेरी दादी के लिए बहुत सारा खाना भेज दो। और उन्हें कभी दुख मत देना।"

भगवती की आँखें फिर भर आईं। उसने सोचा कि यह छोटी-सी बच्ची भी उससे ज्यादा समझदार थी। जहाँ वह जीवन की कठिनाइयों से निराश हो चुकी थी, वहीं फूलवा को अब भी विश्वास था कि कुछ अच्छा होगा।

तभी अचानक दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी। भगवती ने जल्दी से आँसू पोंछे और दरवाजा खोला। बाहर उनकी पड़ोसन, कमला खड़ी

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

थी। कमला ने भगवती को देखते ही कहा, "अरे भगवती, आज मैं कुछ ज्यादा खाना बना बैठी। सोचा तुम्हारे लिए भी ले आऊँ।"

भगवती आश्चर्य से देखती रह गई। कमला के हाथों में एक छोटी-सी पोटली थी जिसमें गर्म रोटियाँ और थोड़ी सब्जी थी। यह देखकर फूलवा खुशी से उछल पड़ी, "देखो दादी! भगवान ने मेरी प्रार्थना सुन ली!"

भगवती को समझ नहीं आया कि यह चमत्कार था या संयोग, लेकिन उस रात उसने पहली बार चैन की नींद सोई। उसे अहसास हुआ कि कभी-कभी आशा और विश्वास से भी जीवन की सबसे कठिन लड़ाइयाँ जीती जा सकती हैं।

गरीबी निर्दयी होती है, लेकिन मासूमियत, प्रेम और विश्वास के आगे वह भी हार मान जाती है।

गाँव में हलचल मची हुई थी। सरकारी आदेश ने सभी को विचलित कर दिया था। गाँव की ज़मीन अधिग्रहण करने का निर्णय सुनाया जा चुका था और इसका सीधा असर वहाँ रहने वाले हर परिवार पर पड़ने वाला था। भगवती की झोपड़ी भी उसी ज़मीन पर थी, जहाँ उसने वर्षों से अपने संघर्षों की नींव रखी थी।

भगवती एक मजबूत औरत थी। उसने अपनी बेटी फूलवा को अकेले ही पाला था। जब उसका पति बीमारी के कारण चल बसा, तब भी उसने हार नहीं मानी। वह खेतों में काम करती, दूसरे लोगों के घरों में काम करके अपनी बेटी को पालती रही। लेकिन आज जब सरकार ने उनकी ज़मीन छीनने का फरमान जारी किया, तो पूरा गाँव हताश हो गया। कई लोगों के पास कोई और आश्रय नहीं था। भगवती के चेहरे पर चिंता की लकीरें स्पष्ट दिख रही थीं, लेकिन उसकी आँखों में अडिग आत्मविश्वास था।

"माई, अब हम कहाँ जाएँगे?" फूलवा ने चिंता से पूछा।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

भगवती ने अपनी बेटी के सिर पर हाथ फेरा और हल्की मुस्कान के साथ कहा, "बिटिया, हमारी दुनिया तो हमारे हौसले में बसती है। यह ज़मीन छिन सकती है, लेकिन हमारा हौसला कोई नहीं छीन सकता। हम कहीं और चलेंगे, जहाँ फिर से एक नई ज़िंदगी शुरू कर सकें।"

वह रात गाँव में अंतिम रात थी। लोग अपने टूटे हुए सपनों के साथ घरों के बाहर बैठे थे। गाँव का चौपाल सन्नाटे में डूबा था। सुबह होते ही सरकारी अफसर और मशीनें आ जाने वाली थीं। भगवती ने अपनी झोपड़ी में आखिरी रात बिताई। वह अपनी पुरानी यादों को दिल में समेटकर बैठी रही। यह वही झोपड़ी थी जहाँ उसने फूलवा का जन्म देखा था, जहाँ उसके पति की यादें बसी थीं, जहाँ हर दीवार पर उसके संघर्ष की कहानियाँ अंकित थीं।

अगली सुबह गाँव की धूल भरी सड़कों पर भगवती और फूलवा नंगे पाँव निकल पड़ीं। उनके पास बस कुछ कपड़े और एक छोटी पोटली थी, जिसमें जीवन की बची-खुची पूँजी थी। गाँव के लोगों की आँखों में आँसू थे। कुछ ने भगवती को रोकने की कोशिश की, पर वह जानती थी कि अब यहाँ रुकना बेकार था।

रास्ते में कई चुनौतियाँ आईं। कई गाँवों से गुज़रते हुए लोगों की उपेक्षा भी सहनी पड़ी। कुछ ने मदद की, तो कुछ ने दुत्कार दिया। लेकिन भगवती ने हार नहीं मानी। एक दिन चलते-चलते वे एक बड़े शहर के करीब पहुँच गईं।

शहर की चकाचौंध भरी दुनिया बिल्कुल अलग थी। ऊँची-ऊँची इमारतें, तेज़ रफ्तार गाड़ियाँ, और लोगों की भीड़। यहाँ हर कोई अपने ही संघर्षों में उलझा हुआ था। भगवती और फूलवा एक कोने में बैठकर सोचने लगीं कि अब आगे क्या किया जाए।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

"माई, हमें यहाँ कौन काम देगा? हमारे पास तो कोई जान-पहचान भी नहीं है," फूलवा ने घबराकर पूछा।

भगवती ने उसकी चिंता भाँप ली। "बिटिया, मेहनत से बढ़कर कोई सिफारिश नहीं होती। अगर हमारे हाथों में हुनर है, तो हमें कोई न कोई ज़रूर अपनाएगा।"

भगवती ने पहले तो शहर के मंदिर के बाहर बैठकर लोगों से मदद माँगी, लेकिन यह उसे सही नहीं लगा। वह कोई मेहनत का काम करना चाहती थी। फिर उसने एक ढाबे में काम माँगा। ढाबे के मालिक ने दयालुता दिखाते हुए उसे बर्तन धोने का काम दे दिया।

कुछ ही दिनों में उसकी लगन और मेहनत देखकर मालिक ने उसे खाना पकाने का काम भी सौंप दिया। उसकी बनाई रोटियों में घर की गर्माहट और माँ के हाथों का स्वाद था। धीरे-धीरे वह ढाबे की मुख्य रसोइया बन गई।

फूलवा को भी एक छोटे स्कूल में दाखिला मिल गया। भगवती दिन-रात मेहनत करके उसकी पढ़ाई के पैसे जुटाने लगी। उसकी ज़िंदगी अब एक नई राह पर थी।

समय बीतता गया। फूलवा ने पढ़ाई में अपनी माँ की मेहनत को व्यर्थ नहीं जाने दिया। उसने पढ़-लिखकर एक अच्छी नौकरी पा ली। अब वह खुद अपनी माँ को आराम देना चाहती थी।

एक दिन उसने कहा, "माई, अब तुम्हें काम करने की ज़रूरत नहीं है। अब मैं संभाल लूँगी।"

भगवती की आँखों में खुशी के आँसू थे। उसे यकीन हो गया था कि उसकी मेहनत रंग लाई।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

जिस दिन फूलवा अपने पहले वेतन से अपनी माँ को एक सुंदर साड़ी लाकर दी, उस दिन भगवती ने महसूस किया कि सच में पतझड़ के इस मौसम में भी कहीं कोई फूल खिल ही गया था।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

30. उसका प्यार और मेरी बेबसी

गर्मी की दोपहर अपने चरम पर थी। गाँव की सँकरी गलियाँ किसी भट्टी की तरह तप रही थीं, और घरों के बाहर लगे नीम और पीपल के पेड़ भी अपनी छाँव से इस तपिश को रोक पाने में असमर्थ लग रहे थे। आसमान में सूरज आग उगल रहा था, और धरती से उठती लपटें जैसे पैरों को झुलसा देने को तत्पर थीं। मैं खेतों की मेड़ पर बैठा, अपनी दृष्टि क्षितिज तक फैले सुनहरे गेहूँ के लहलहाते खेतों पर टिकाए, खोया-खोया सा बैठा था। हवा बहुत धीमी थी, मानो वह भी इस जलती दोपहर से हार मानकर सुस्ताने लगी हो। पक्षी कहीं छाँव में दुबक गए थे, और गाँव के कुएँ पर पानी भरने वाली औरतों की आवाज़ें भी जैसे इस झुलसते समय के आगे मौन हो गई थीं। लेकिन मेरे भीतर की हलचल, उस सन्नाटे से कहीं अधिक तीव्र थी। मेरे मन में कुछ उमड़ रहा था, कुछ ऐसा जिसे मैं शब्दों में ढाल नहीं पा रहा था। हृदय किसी अनदेखी वेदना से भरा हुआ था, और यादों के बादल घने होकर बरसने को तैयार थे।

वे यादें, जिनमें उसकी हँसी थी, उसकी मधुर वाणी थी, और मेरा अधूरा प्रेम था। वह जो कभी मेरे जीवन का सबसे सुंदर हिस्सा थी, आज केवल एक अधूरी कहानी बनकर रह गई थी। उसकी चंचल मुस्कान, वह हल्की झिड़कियाँ, और अनजाने में दिया गया अपनापन—सब कुछ मानो किसी चलचित्र की भाँति मेरी आँखों के सामने घूम रहा था। वर्षों पहले की वे बातें, जो कभी मामूली लगी थीं, आज दिल में एक टीस बनकर उभर रही थीं। मैं सोच रहा था कि कैसे समय बीत जाता है, पर कुछ घाव कभी

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

नहीं भरते। वह चली गई थी, शायद कभी लौटकर न आने के लिए, पर उसकी यादों ने मेरे दिल में अपना एक स्थायी घर बना लिया था। मैं खेतों की मेड़ पर बैठा, दूर तक फैले खेतों को देखता रहा, जैसे उन सुनहरे खेतों में उसकी मुस्कान अब भी चमक रही हो, जैसे गेहूँ की बालियों में उसकी खिलखिलाहट गूँज रही हो। लेकिन मेरे पास अब केवल ये यादें थीं—खामोश, लेकिन चिरस्थायी।

शारदा...! हाँ, यही नाम था उसका। गाँव के ठाकुर परिवार की इकलौती बेटी। जब पहली बार उसे देखा था, तब मैं बस एक साधारण किसान का बेटा था, जो मेहनत-मजदूरी कर अपने पिता का हाथ बँटाता था। वह ऊँची जाति की थी, मैं नीची जाति का। फिर भी, न जाने कैसे हमारी आँखें बार-बार टकराने लगीं। मेरे लिए उसकी मुस्कान ही सारा संसार थी, और उसकी मीठी बातें मेरे लिए संजीवनी। लेकिन समाज की इन दीवारों का एहसास हमें तब हुआ, जब पहली बार उसने मुझसे अपने दिल की बात कही।

हमारा गाँव परंपराओं और सामाजिक बंधनों से जकड़ा हुआ था। ठाकुरों के घर की बेटी किसी किसान के बेटे से प्रेम करे, यह बात ही असंभव थी। लेकिन दिल किसी बंधन को कहाँ मानता है? हम अक्सर गाँव के पुराने पीपल के पेड़ के नीचे मिलते थे, जहाँ हवाएँ हमारी भावनाओं की गवाह बनतीं और चिड़ियों की चहचहाहट हमारे मन के गीत गाती।

शारदा बहुत समझदार थी। उसने मुझे पढ़ाई करने के लिए प्रेरित किया। वह चाहती थी कि मैं केवल एक खेतिहर मजदूर बनकर न रहूँ, बल्कि अपनी पहचान बनाऊँ। उसकी प्रेरणा से मैंने रातों को जागकर पढ़ाई की, किताबों से दोस्ती की। गाँव में शिक्षा की बहुत कद्र नहीं थी, लेकिन मैंने ठान लिया था कि मैं अपनी मेहनत से अपने लिए एक नया रास्ता बनाऊँगा।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

हमारे प्रेम की खबर धीरे-धीरे पूरे गाँव में फैलने लगी। ठाकुर साहब, शारदा के पिता, को जब यह पता चला, तो मानो बिजली गिर पड़ी। उन्होंने शारदा को घर में बंद कर दिया। हमारे मिलने-जुलने पर पाबंदी लगा दी गई। उन्होंने मेरी जाति और हैसियत का ताना देकर मुझे धमकाया। लेकिन प्रेम किसी बंधन को कहाँ मानता है?

शारदा ने एक दिन अपनी खिड़की से मुझे एक पत्र फेंककर दिया। उसमें लिखा था—

"तुम मेरे जीवन का सपना हो। लेकिन यह समाज हमारे प्रेम को कभी स्वीकार नहीं करेगा। मैं चाहती हूँ कि तुम इस गाँव से दूर चले जाओ, कुछ बनो, और फिर लौटकर आओ। अगर हमारा प्रेम सच्चा है, तो यह समय की कसौटी पर खरा उतरेगा।"

उसका यह पत्र पढ़कर मेरा मन व्याकुल हो उठा। मैं शारदा को छोड़कर जाने की कल्पना भी नहीं कर सकता था, लेकिन मैंने उसकी बात मानी। मैंने गाँव छोड़ दिया, शहर की ओर रुख किया। शहर में संघर्ष भरा जीवन मेरा इंतजार कर रहा था। मैंने दिन-रात मेहनत की, पढ़ाई की, और अंततः एक सरकारी अफसर बन गया। अब मैं केवल किसान का बेटा नहीं था, बल्कि अपनी मेहनत से सम्मान अर्जित कर चुका था।

पाँच साल बाद, जब मैं गाँव लौटा, तो मेरा दिल उम्मीदों से भरा हुआ था। लेकिन गाँव में जो सुना, उसने मेरे पैरों तले जमीन खिसका दी। शारदा का विवाह कर दिया गया था। वह अब किसी और की पत्नी थी। मैं उस पीपल के पेड़ के नीचे बैठा, जहाँ कभी हमारी मुलाकातें हुआ करती थीं। हवा में वही मिठास थी, वही चिड़ियों की चहचहाहट थी, लेकिन अब वहाँ मेरी शारदा नहीं थी।

गाँव में किसी ने बताया कि शादी के बाद शारदा ज्यादा दिन नहीं जी पाई। उसने अपने नए जीवन को अपनाने की कोशिश की, लेकिन

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

प्रेम का दर्द उसके मन को खोखला कर गया। मेरा मन टूट चुका था। मैं अपनी आँखों के आँसू नहीं रोक पा रहा था।

शारदा तो चली गई थी, लेकिन उसकी यादें, उसकी बातें, उसकी हँसी—सब मेरे साथ थीं। समाज ने हमारे प्रेम को तोड़ने की बहुत कोशिश की, लेकिन क्या प्रेम वास्तव में कभी टूट सकता है? वह आज भी मेरे हृदय में जीवित थी, मेरे हर निर्णय में, मेरी हर सोच में। मैंने गाँव में एक स्कूल खोला, जहाँ हर जाति के बच्चे एक साथ पढ़ सकें, ताकि भविष्य में किसी और की शारदा को जाति की दीवारों के कारण अपने प्रेम का बलिदान न देना पड़े।

शारदा नहीं रही, लेकिन उसका सपना जीवित था। और मैं, एक किसान का बेटा, अब केवल अपने सपनों को ही नहीं, बल्कि शारदा के अधूरे सपनों को भी पूरा करने में लगा था।

रघु और शारदा की प्रेम कहानी एक ऐसे समाज में जन्मी थी, जहाँ जाति और वर्ग के बंधन प्रेम पर भारी पड़ते थे। यह उन दिनों की बात है जब गाँव के बड़े-बुजुर्ग समाज की मर्यादा को सबसे ऊपर रखते थे, और प्रेम को अक्सर विद्रोह के रूप में देखा जाता था।

रघु और शारदा का पहला मिलन आम के बगीचे में हुआ था। उस दिन मौसम बड़ा सुहाना था। सूरज की किरणें पत्तों से छनकर ज़मीन पर सुनहरी चादर बिछा रही थीं। रघु गाँव का एक साधारण लड़का था, जो मेहनत-मजदूरी कर अपना जीवन व्यतीत करता था। दूसरी ओर, शारदा ठाकुर साहब की बेटी थी, जिसकी परवरिश राजसी ठाट-बाट में हुई थी।

जब शारदा ने हिम्मत जुटाकर रघु से कहा, "रघु, मैं तुमसे प्यार करती हूँ," तो वह एकदम स्तब्ध रह गया। दिल की धड़कनें तेज़ हो गईं, जैसे किसी ने भीतर तूफान पैदा कर दिया हो। यह सपना था या हकीकत? क्या ठाकुर साहब की बेटी उससे प्रेम कर सकती थी? लेकिन जब उसने

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

शारदा की आँखों में झाँका, तो वहाँ केवल सच्चाई और मासूमियत नज़र आई। उसकी झिझक को तोड़ते हुए उसने काँपती आवाज़ में कहा, "शारदा, मैं भी तुमसे प्यार करता हूँ, लेकिन... यह समाज हमें स्वीकार नहीं करेगा।"

शारदा की आँखों में पहली बार आँसू छलक आए। उसने धीमे स्वर में कहा, "रघु, अगर प्रेम पवित्र है, तो समाज हमें क्यों अलग करेगा?" यह सवाल बहुत बड़ा था, लेकिन इसका उत्तर किसी के पास नहीं था।

उन दोनों के प्रेम का सिलसिला आगे बढ़ता रहा। वे चोरी-चुपके मिलते, पुराने पीपल के पेड़ के नीचे, तालाब के किनारे, या फिर किसी सुनसान पगडंडी पर। उनके बीच चिट्ठियों का आदान-प्रदान भी होने लगा। शारदा अपनी सुंदर लिखावट में अपने दिल की बातें लिखती, और रघु उन शब्दों को पढ़कर भावनाओं में डूब जाता।

हर मुलाकात के साथ उनका प्रेम और गहरा होता गया। शारदा को अब समाज की परवाह नहीं थी, लेकिन रघु हमेशा डरा रहता। उसे पता था कि ठाकुर साहब इस प्रेम को कभी स्वीकार नहीं करेंगे। वह अपनी भावनाओं को दबाने की कोशिश करता, लेकिन प्रेम का बंधन इतना मजबूत था कि उसे रोकना असंभव था।

गाँव में अफवाहें फैलने लगीं। लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि ठाकुर साहब की बेटी किसी के साथ छुप-छुपकर मिलती है। यह खबर जब ठाकुर साहब के कानों तक पहुँची, तो उन्होंने शारदा को घर में कैद कर दिया। उसके बाहर निकलने पर सख्त पाबंदी लगा दी गई। इधर रघु के लिए भी मुश्किलें बढ़ गईं। गाँव के कुछ लोग उसे तिरस्कार की नज़रों से देखने लगे। उसे धमकियाँ मिलने लगीं कि अगर उसने शारदा से मिलना बंद नहीं किया, तो अंजाम बुरा होगा।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

रघु और शारदा दोनों बेबस थे, लेकिन उनके प्रेम की आग बुझी नहीं थी। शारदा किसी न किसी तरह रघु तक संदेश पहुँचाने की कोशिश करती, और रघु भी गाँव के डर से छुप-छुपकर उसे देखने की कोशिश करता।

एक रात, जब चाँदनी अपने चरम पर थी, शारदा ने घर की खिड़की से बाहर झाँका। उसका दिल तेजी से धड़क रहा था। उसने एक पर्ची में लिखा, "रघु, अगर हम साथ नहीं रह सकते, तो जीने का क्या मतलब? मैं आज रात तालाब के पास मिलूँगी।"

रघु ने यह संदेश पढ़ा तो उसका दिल बैठ गया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि शारदा क्या करने वाली है। वह भागते हुए तालाब के पास पहुँचा। वहाँ शारदा खड़ी थी, आँखों में आँसू लिए।

"रघु, अब और सहन नहीं होता। चलो, कहीं दूर चलते हैं," शारदा ने कहा।

रघु के लिए यह आसान नहीं था। उसने शारदा को समझाने की कोशिश की कि समाज के विरुद्ध जाकर जीना आसान नहीं होगा। लेकिन शारदा अडिग थी। उसने कहा, "अगर हमारे प्रेम को इस दुनिया में जगह नहीं मिल सकती, तो हमें अपनी दुनिया खुद बनानी होगी।"

शारदा और रघु ने गाँव छोड़ने का फैसला कर लिया। वे रात के अंधेरे में गाँव से निकल गए, लेकिन भाग्य को कुछ और ही मंजूर था। ठाकुर साहब के आदमी उनके पीछे पड़ गए।

रघु और शारदा भागते रहे, लेकिन आखिरकार उन्हें पकड़ लिया गया। ठाकुर साहब ने गुस्से में रघु को पीटने का हुक्म दिया। शारदा चिल्लाती रही, गिड़गिड़ाती रही, लेकिन किसी ने उसकी एक न सुनी।

रघु को अधमरा छोड़कर ठाकुर साहब शारदा को घर ले गए और उसे फिर से कैद कर दिया। लेकिन प्रेम इतनी आसानी से हार नहीं

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

मानता। शारदा ने ठान लिया था कि वह अपने प्रेम के लिए लड़ेगी। उसने खाना-पीना छोड़ दिया, और धीरे-धीरे उसकी हालत बिगड़ने लगी।

ठाकुर साहब की पत्नी, जो अपनी बेटी से बहुत प्यार करती थी, आखिरकार पिघल गईं। उन्होंने ठाकुर साहब को समझाया कि प्रेम को कैद नहीं किया जा सकता। समाज के डर से अपनी ही बेटी को तड़पाना ठीक नहीं है।

ठाकुर साहब का दिल धीरे-धीरे बदलने लगा। उन्होंने महसूस किया कि शारदा के बिना उनकी दुनिया अधूरी थी। एक दिन उन्होंने शारदा को अपने पास बुलाया और कहा, "अगर तुम्हारी खुशी रघु के साथ है, तो मैं तुम्हें रोकूंगा नहीं।"

यह सुनते ही शारदा की आँखों में खुशी के आँसू छलक पड़े। रघु भी अपने घावों से उबर चुका था। ठाकुर साहब ने समाज के बंधनों को तोड़ते हुए, पूरे गाँव के सामने रघु और शारदा के विवाह की घोषणा कर दी। यह सुनकर पूरा गाँव स्तब्ध रह गया। लेकिन धीरे-धीरे लोगों ने समझ लिया कि प्रेम किसी जाति या वर्ग का मोहताज नहीं होता।

रघु और शारदा की शादी पूरे गाँव के सामने धूमधाम से हुई। यह प्रेम की सच्ची जीत थी। उनका प्यार समाज की बंदिशों से ऊपर था, और उन्होंने अपने हौसले और संघर्ष से यह साबित कर दिया कि सच्चे प्रेम की राह में कोई भी रुकावट स्थायी नहीं होती।

उनकी कहानी आज भी गाँव में सुनाई जाती है, एक मिसाल के रूप में कि प्रेम की ताकत सबसे बड़ी होती है।

गाँव की मिट्टी में पला-बढ़ा प्रेम, समाज के बंधनों में जकड़ा, और नियति के क्रूर हाथों से बिछड़ा—यह मेरी कहानी है। जब मैं और वह पहली बार मिले थे, तब हम महज बच्चे थे। हमारी दोस्ती धीरे-धीरे गहरी होती गई, और फिर कब प्रेम में बदल गई, हमें खुद भी पता नहीं चला।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

हमारे गाँव के आम के पेड़ों की छाँव में हमने कितनी ही शामें बिताईं, सपनों की दुनिया सजाई, और आने वाले जीवन के सुंदर रंगों की कल्पना की।

लेकिन प्रेम केवल भावनाओं से नहीं चलता, वह समाज की बेड़ियों में जकड़ा रहता है। जैसे ही गाँव में हमारे प्रेम की आहट फैली, घर-घर चर्चाएँ शुरू हो गईं। गाँव का माहौल बदलने लगा, और उसकी शादी आनन-फानन में एक बड़े ज़मींदार के बेटे से तय कर दी गई। यह खबर सुनकर मेरे पैरों तले ज़मीन खिसक गई। उसने रो-रोकर अपने पिता से विनती की, अपनी माँ के आगे हाथ जोड़े, लेकिन उसकी आँखों के आँसू किसी को नहीं पिघला सके। समाज की बंदिशें प्रेम पर भारी पड़ीं।

शादी वाले दिन, जब पूरे गाँव में धूमधाम मची थी, तब मैं अपने ही खेतों में अकेला बैठा था। मन कर रहा था कि दौड़कर उसे रोक लूँ, उसे अपने साथ कहीं दूर ले जाऊँ। लेकिन यह बेबसी थी मेरी। मैं चाहता था कि कोई चमत्कार हो जाए, समय ठहर जाए, या फिर वह खुद दौड़कर मेरे पास चली आए। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। उसकी डोली उठी, और मेरा प्यार मेरी आँखों के सामने किसी और के जीवन का हिस्सा बन गया।

शादी के बाद वह शहर चली गई। मैं फिर से अपनी पुरानी जिंदगी में लौट आया, लेकिन कुछ भी पहले जैसा नहीं रहा। मेरी दुनिया बेरंग हो गई थी। वह गली, जहाँ हम घंटों बातें किया करते थे, अब सूनी लगती थी। वह बगीचा, जहाँ हमने पहली बार अपने दिल की बातें की थीं, अब वीरान सा प्रतीत होता था। आम के वे पेड़, जहाँ उसने कभी मेरे नाम की निशानी बनाई थी, अब मेरे लिए केवल पीड़ा के प्रतीक बन गए थे। हर रात मैं उसकी यादों में खो जाता और हर सुबह टूटे हुए दिल के साथ जागता।

समय बीतता गया, लेकिन उसकी यादें धुंधली नहीं हुईं। एक दिन उसकी माँ मेरे खेतों तक आई। उनकी आँखों में अजीब सा दर्द था। उन्होंने बताया कि वह खुश नहीं है। उसका पति उसे समझ नहीं पाता,

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

उसके सपनों को, उसकी भावनाओं को कुचल देता है। वह शहर के बड़े मकान में कैद होकर रह गई है। यह सुनकर मेरे दिल में अजीब सी हलचल हुई। मुझे पहले से ही पता था कि वह कभी खुश नहीं रह सकती थी, क्योंकि उसका दिल तो कहीं और था। लेकिन मैं कर भी क्या सकता था?

कभी-कभी मन करता था कि सब कुछ छोड़कर उससे मिलने चला जाऊँ। उससे पूछूँ कि क्या वह अब भी मुझे याद करती है? क्या उसकी आँखें अब भी उन दिनों को तलाशती हैं, जब हम साथ थे? लेकिन हकीकत यह थी कि हमारे बीच अब एक समाज था, परंपराओं की दीवार थी, और शायद एक न खत्म होने वाली दूरी थी।

एक दिन मैंने सुना कि वह गाँव आई हुई है। मेरा मन बेचैन हो गया। कई बार सोचा कि उससे मिलने जाऊँ, पर फिर खुद को रोक लिया। सोचा, क्या फायदा? फिर भी दिल ने हार नहीं मानी। अगले दिन मैंने उसे दूर से देखा। वह पहले से कमजोर लग रही थी, उसकी आँखों में वही पुराना दर्द था, जो मैंने उसके चेहरे पर शादी के दिन देखा था। मैंने चाहा कि वह एक बार मेरी ओर देखे, लेकिन उसने नहीं देखा। या शायद उसने देखा, लेकिन नजरें चुराकर चली गई।

उस दिन मुझे समझ आया कि प्रेम केवल पाने का नाम नहीं होता, कभी-कभी खो देने में भी प्रेम छिपा होता है। उसकी खुशी के लिए मैं चुप रहा, लेकिन अब समझ आता है कि वह कभी खुश नहीं थी। और शायद मैं भी नहीं। समय बीतता जा रहा है, लेकिन कुछ जख्म ऐसे होते हैं, जो कभी नहीं भरते। शायद यह प्रेम का असली रूप है—एक ऐसी आग, जो बुझती नहीं, बस भीतर ही भीतर जलती रहती है।

गाँव की मिट्टी की सौंधी खुशबू और खेतों की लहलहाती हरियाली के बीच बचपन बीता था मेरा और शारदा का। हम दोनों का साथ खेलते-कूदते, पढ़ते-लिखते बीता था। खेतों की मेड़ों पर दौड़ना, आम के

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

पेड़ पर झूला झूलना और नदी के किनारे घंटों बैठकर बातें करना—ये सब हमारी यादों का हिस्सा थे। शारदा मेरे जीवन का अभिन्न हिस्सा थी। उसकी मुस्कान में एक अनोखा जादू था, जो हर दुख-दर्द को मिटा देती थी।

समय बीतता गया, और हम बड़े होते गए। बचपन का वह निश्छल स्नेह कब प्रेम में बदल गया, पता ही नहीं चला। लेकिन यह प्रेम एक सपना बनकर रह गया, जिसे हम चाहकर भी पूरा नहीं कर सके। समाज की रूढ़ियाँ, परिवार की मजबूरियाँ और परिस्थितियों की बेड़ियाँ हमारे बीच खड़ी हो गईं। मुझे शहर जाकर अपनी पढ़ाई पूरी करनी थी, और वह गाँव में रहकर अपने माता-पिता की सेवा कर रही थी। जाते समय उसकी आँखों में एक अनकही पीड़ा थी, जिसे मैं समझते हुए भी अनदेखा कर गया।

शहर में कदम रखते ही जीवन की भागदौड़ शुरू हो गई। नए सपने, नई जिम्मेदारियाँ और नए रिश्तों ने मुझे घेर लिया। लेकिन शारदा की यादें दिल के किसी कोने में बसी रहीं। मैं कभी-कभी उसे पत्र लिखता, पर जवाब कभी नहीं आता। धीरे-धीरे मेरा मन भी व्यस्तताओं में उलझने लगा, और मैं शारदा से दूर होता गया।

गाँव से मिलने वाले किसी भी व्यक्ति से मैं शारदा का हाल पूछता, पर उसकी बातें टाल दी जातीं। कोई स्पष्ट जवाब नहीं देता। मन में अजीब-सी बेचैनी रहती, पर मैं खुद को यह सोचकर दिलासा देता कि वह ठीक होगी। इस बीच, मेरी नौकरी लग गई, और मैं अपने परिवार की जिम्मेदारियों में उलझ गया। समय के साथ मुझे लगा कि अब शारदा भी अपने जीवन में आगे बढ़ चुकी होगी।

फिर एक दिन अचानक गाँव से खबर आई कि शारदा अब इस दुनिया में नहीं रही। सुनते ही मेरे हाथों से काम करते-करते औजार गिर पड़ा। दिल बैठ गया। वर्षों पुरानी यादें बिजली की तरह आँखों के सामने

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016 -ISBN No. 978-81-4916-91-5

कौंधने लगीं। वह कौन-सा दर्द था, जो उसे जीने नहीं दे रहा था? क्यों उसने इस दुनिया को अलविदा कह दिया? मैं दौड़ता हुआ गाँव पहुँचा, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

गाँव में मातम छाया हुआ था। शारदा के घर के बाहर भीड़ थी, और उसकी माँ बेसुध पड़ी थी। उसकी बुझी हुई आँखें मुझसे जैसे पूछ रही थीं—"रघु, क्यों नहीं आए मुझे लेने?" लेकिन मेरे पास कोई जवाब नहीं था। मैं चाहता था कि समय वापस लौट जाए, कि मैं अपने किए को सुधार सकूँ, पर ऐसा संभव नहीं था। उसकी अर्थी को कंधा देते हुए ऐसा लगा, जैसे मेरी आत्मा का एक हिस्सा भी चला गया हो।

कुछ दिनों बाद मुझे गाँव के बुजुर्ग से पता चला कि शारदा ने जीवनभर मेरा इंतजार किया। उसने कभी किसी और के बारे में सोचा तक नहीं। जब उसे लगा कि अब कोई उम्मीद नहीं बची, तो उसने जीने की इच्छा ही छोड़ दी। उसकी बीमारी बढ़ती गई, और अंततः उसने दम तोड़ दिया। यह सुनकर मैं खुद को और अधिक अपराधी महसूस करने लगा। काश! मैं समय पर आ जाता। काश! मैंने उसे अकेला न छोड़ा होता।

आज भी जब गाँव की गलियों से गुजरता हूँ, तो उसकी आवाज़ कानों में गूँजती है। उसकी हँसी, उसकी बातें, उसकी आँखों के आँसू—सब कुछ वैसा ही लगता है, जैसे कल की बात हो। पर हकीकत यह है कि वह चली गई, और मैं आज भी बेबस उसी मोड़ पर खड़ा हूँ, जहाँ हमारा प्रेम दम तोड़ चुका था। समय ने सब कुछ बदल दिया, पर मेरे भीतर की टीस आज भी वैसी ही बनी हुई है। अब बस उसकी यादें ही मेरा सहारा हैं, और मैं उन यादों के सहारे जीवन काट रहा हूँ।



डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त' हिंदी साहित्य जगत के प्रसिद्ध व्यंग्यकार, बाल साहित्य लेखक और कवि हैं। उनकी लेखनी में सामाजिक यथार्थ का गहरा बोध, मानवीय संवेदनाओं की सजीव अभिव्यक्ति और व्यंग्य की तीक्ष्ण धार देखने को मिलती है। उन्होंने तेलंगाना सरकार के लिए प्राथमिक स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर पर कुल 55 पुस्तकों के लेखन, संपादन और समन्वय में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके ऑनलाइन संपादन में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के कार्यों के डिजिटल संस्करणों का संपादन भी शामिल है।

डॉ. मिश्रा के व्यंग्य लेखों ने व्यापक लोकप्रियता प्राप्त की है। *शिक्षक की मौत* पर उनके व्यंग्य को साहित्य आजतक चैनल पर आठ लाख से अधिक लोगों ने पढ़ा, देखा और सुना, जिससे उन्होंने व्यंग्यकार के रूप में एक विशिष्ट पहचान बनाई। उनके व्यंग्य संग्रह *एक तिनका इक्यावन आँखें*, *म्यान एक तलवार अनेक*, *गपोड़ी अड्डा* और *सब रंग में मेरे रंग* समाज की विसंगतियों पर करारा प्रहार करते हैं। वहीं, उनके कहानी संग्रह *बूँद-बूँद समुंदर*, *धूप-छाँव के रिश्ते*, *अनदेखे मोड़* और *यादों की पगडंडी* मानवीय संवेदनाओं की गहराई को छूते हैं।

उनकी उत्कृष्ट साहित्यिक साधना के लिए उन्हें *तेलंगाना हिंदी अकादमी द्वारा श्रेष्ठ नवयुवा रचनाकार सम्मान, 2021* (तेलंगाना के मुख्यमंत्री के. चंद्रशेखर राव के करकमलों से), *व्यंग्य यात्रा रवींद्रनाथ त्यागी सोपान सम्मान* (आदरणीय सूर्यबाला जी, प्रेम जनमेजय जी, प्रताप सहगल जी, कमल किशोर गोयनका जी के करकमलों से), *साहित्य सृजन सम्मान*, *प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के करकमलों से सम्मान* सहित कई प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

डॉ. मिश्रा की लेखनी समाज को आईना दिखाने के साथ-साथ पाठकों को नए दृष्टिकोण प्रदान करती है, जिससे वे अपने आसपास की दुनिया को अधिक सूक्ष्मता और गहराई से देखने में सक्षम होते हैं।

9 788149 169154